गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग
मैं महात्मा नहीं हूं
मेरा जीवन ही मेरा संदेश है
मो. क. गांधी

मैं महात्मा नहीं हूं

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

●

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

●

१९८१
सस्ता साहित्य मंडल
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती —
[illegible]

प्रकाशक

यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
सेवा-संस्थान
मथुरा

तीसरी बार : १६८१

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने के समझ में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्राभाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। वहां विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो. क. गांधी

मैं
महात्मा
नहीं हूं

●

: १ :

मैं महात्मा नहीं हूं

गांधीजी बंगलौर में ठहरे हुए थे। एक दिन एक स्त्री थाली में नारियल, केले, पान, सुपारी और फूल आदि लेकर आई। वह सब सामग्री उसने गांधीजी के पैरों के पास रख दी और चरण छूकर सामने खड़ी हो गई। गांधीजी ने उत्तर में हाथ जोड़े। वह बहन उसी तरह खड़ी रही। गांधीजी ने दूसरी बार हाथ जोड़े, तीसरी बार हाथ जोड़े, लेकिन वह बहन वहां से नहीं हटी। उस समय चक्रवर्ती राजगोपालाचारी गांधीजी के साथ थे। गांधीजी ने उनसे कहा, "क्या इन्हें कुछ कहना है? जरा पूछिए तो।"

कन्नड़ में उस बहन से बातचीत करने के बाद राजाजी ने कहा, "इन्हें पुत्र की आवश्यकता है। आप महात्मा हैं। यह आपसे पुत्र-प्राप्ति के लिए आशीर्वाद चाहती है।"

गांधीजी बोले, "मैं महात्मा नहीं हूं। मैं आशीर्वाद कैसे दूं?"

राजाजी ने कहा, "यह बहन कहती है कि आपने बहुतों को आशीर्वाद दिये हैं और वे फले भी हैं, तब मुझे क्यों नहीं देते?"

गांधीजी ने कहा, "मुझे अभी ही इस बात का पता चला है

कि मुझमें ऐसी कोई शक्ति है। लेकिन इससे कहिए, गांव में इतने बालक हैं, उनमें से किसी एक को गोद लेकर उसका लालन-पालन क्यों नहीं करती ?"

राजाजी के द्वारा बहन ने उत्तर दिया, "वैसे तो मैं रिश्ते-दारों के और पड़ोसियों के सभी बालकों को प्यार करती हूं, लेकिन अपना तो आखिर अपना ही है न ?"

इसपर गांधीजी ने उसे 'मेरे-तेरे' और 'अपने-पराये' पर एक अच्छा प्रवचन दिया, परन्तु वह बहन तो टस-से-मस होने-वाली नही थीं। हुई भी नहीं। आखिर गांधीजी बोले, "अगर भगवान तुझको बेटा देना चाहें तो क्या मैं इंकार कर सकता हूं ?"

यह सुनकर उन बहन को लगा कि जैसे आशीर्वाद मिल गया है। प्रणाम करके वह वहां से चली गई।

: २ :

मुआवजे की आशा नहीं रखनी चाहिए

'यंग इण्डिया' को अपने अधिकार में लेने से पहले गांधीजी एक दिन उसके पृष्ठ पलट रहे थे। उसके वास्तविक संपादक श्री आर० के० प्रभू उनके पास ही बैठे थे। गांधीजी ने पूछा, "आपने ये खबरें कहां से ली हैं ?"

श्री प्रभू ने उत्तर दिया, " 'यंग इण्डिया' और 'बाम्बे क्रानिकल' के बदले में जो भिन्न-भिन्न भारतीय पत्र आते हैं,

उनके ताजे अंकों से काटकर ली गई हैं।"

गांधीजी ने पूछा, "इस काम में आप कितना समय खर्च करते हैं ?"

श्री प्रभू ने उत्तर दिया, "इस पृष्ठ के लिए जितनी खबर चाहिए, उन्हें तैयार करने में आधा घंटे से ज्यादा शायद ही लगता है।"

गांधीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले, "जब मैं दक्षिण अफ्रीका में 'इण्डियन ओपीनियन' का संपादन करता था, तो परिवर्तन में कोई दो सौ पत्र मिलते थे। मैं उनको सावधानी से पढ़ लेता था और प्रत्येक समाचार को तभी लेता था जब मुझे संतोष हो जाता कि इससे सचमुच पाठकों की सेवा होगी। जब कोई संपादन की जिम्मेदारी लेता है, तो उसे अपना दायित्व पूरी कर्त्तव्यभावना से निभाना चाहिए। इसी पद्धति से सब प्रकार का धन्धा चलाना चाहिए। क्या आप मुझसे सहमत नहीं हैं ?"

आर० के० प्रभू ने लज्जित होकर कहा, "जीहां, पर 'क्रॉनिकल' के सम्पादकीय विभाग के एक कार्यकर्ता के नाते मुझे सप्ताह-भर बहुत काम रहता था, इसलिए 'यंग इण्डिया' के लिए मुझे जल्दी-जल्दी में काम करना पड़ता था।"

गांधीजी ने एकदम पूछा, "और इस सबका आपको पुरस्कार क्या दिया जाता है ?"

श्री प्रभू ने उत्तर दिया, "प्रत्येक कालम दस रुपये के हिसाब से मिलता है।"

एक कालम मुश्किल से दस इंच लम्बा होता था और वह भी दस पाइंट के टाइप में, इस प्रकार उन्हें सौ डेढ़ सौ रुपये मिल

जाते थे। गांधीजी मानो जिरह कर रहे थे, फिर पूछा, "क्रानिकल' के कार्यकर्ता की हैसियत से आपको क्या मिलता है ?"

श्री प्रभू ने उत्तर दिया, "चार सौ रुपये मासिक।"

गांधीजी एक क्षण रुके। फिर बोले, "क्या आपके ख्याल से 'यंग इण्डिया' से जो रकम आप ले रहे हैं, उसका लेना उचित है? आप जानते हैं कि यह पत्र कोई कमाई का पत्र नहीं। यह देश-भक्ति का काम है और मेरे खयाल में स्वावलम्बी भी नहीं है। क्या उसके संचालकों का भार बढ़ाना आपके लिए ठीक है ?"

श्री प्रभू ने उत्तर दिया, "पत्र-संचालक मुझे जो कुछ देते हैं, उसके लिए मैंने उन्हें मजबूर नहीं किया है। यह सब वह स्वेच्छा-पूर्वक करते हैं।"

गांधीजी बोले, "फिर भी यदि मैं आपकी जगह होता, तो 'यंग इण्डिया' से एक पाई भी न लेता। आपको अपने पूरे समय के काम के लिए 'क्रानिकल' कार्यालय से अच्छा वेतन मिलता है। 'यंग इण्डिया' के लिए आप जो कुछ करते हैं, अपने फुर्सत के समय में करते हैं। किसीको अपने पूरे समय के लिए पूरा वेतन मिल जाता हो, तो उसे उसी समय में अन्यत्र किये गए काम के लिए किसी मुआवजे की आशा नहीं रखनी चाहिए। आप ऐसा नहीं मानते ?"

नैतिकता का जो नया पाठ गांधीजी श्री प्रभू के हृदय पर अंकित करना चाहते थे, उससे वह जरा चौंधिया गये और उनके प्रश्न के उत्तर में नम्रतापूर्वक सिर हिलाकर अपनी सहमति मात्र प्रकट कर सके।

मेरा बिस्तरा इसीपर करना

यरवदा-जेल में रात को जब भी बारिश आती तब खाट उठाकर बरामदे में लाना भारी पड़ता था। इसलिए गांधीजी ने मेजर से हल्की खाट मांगी।

उसने कहा, "नारियल की रस्सी की चारपाई है। क्या उससे काम चलेगा? आप कहें तो नारियल की रस्सी निकालकर उसे निवाड़ से बुन दिया जाय।"

शाम को खाट आई। गांधीजी बोले, "यह ठीक है। इस पर निवाड़ चढ़ाने की कोई जरूरत नहीं। मेरा बिस्तरा आज इसीपर करना।"

वल्लभभाई ने कहा, "क्या कहा? इसपर भी सोते हैं? गद्दे में नारियल के बाल क्या कम हैं, जो नारियल की रस्सी पर सोना है! बस चारों कोनों पर नारियल बांधना बाकी है। ऐसी बदशगुन खाट से काम न चलेगा! इसमें कल निवाड़ भरवा दूंगा।"

गांधीजी बोले, "नहीं, वल्लभभाई, निवाड़ में धूल भर जाती है। वह धुलती नहीं। इसपर पानी उंडेला तो साफ।"

वल्लभभाई ने उत्तर दिया, "निवाड़ धोबी को दी तो दूसरे दिन धुलकर आई।"

गांधीजी बोले, "मगर यह रस्सी निकालनी नहीं पड़ती, यहीं धुल जाती है।"

महादेवभाई ने भी गांधीजी का समर्थन किया। कहा, "यह तो गर्म पानी से धोई जा सकती है और इसमें खटमल भी नहीं रहते।"

वल्लभभाई बोले, "चलो, अब तुमने भी राय दे दी। इस खाट में तो पिस्सू-खटमल इतने होते हैं कि पूछो मत।"

गांधीजी ने कहा, "मैं तो इसीपर सोऊंगा। मुझे याद है, बचपन में हमारे यहां ऐसी ही खाटें काम में आती थीं। जब अदरक का अचार डालना होता तो अदरक को चाकू से साफ न करके मेरी मां इस खाट पर घिस लेती थीं। इससे सब छिलके साफ हो जाते थे।"

वल्लभभाई बोले, "इसी तरह इन मुट्ठीभर हड्डियों पर से चमड़ी उधड़ जायगी। इसीलिए कहता हूं कि निवाड़ लगवा लीजिये।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "निवाड़ तो 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' जैसी हो जायगी। इस खाट पर निवाड़ शोभा नहीं देगी। इस-पर तो नारियल की रस्सी ही अच्छी लगेगी। पानी डालते ही वह बिल्कुल धुल जायगी, जैसे कपड़े धुल जाते हैं और वह कभी सड़ेगी नहीं। यह कितना आराम है!"

वल्लभभाई ने कहा, "खैर, मेरा कहना न मानें तो आपकी मर्जी।"

और गांधीजी ने उसी खाट का प्रयोग किया।

तुम्हें शादी करने की बड़ी जरूरत है

यरवदा-जेल में गांधीजी के पास विदेशों से बहुत पत्र आते थे। मार्गरेट नाम की एक स्त्री बड़े प्रेम-भरे पत्र लिखती रहती थी। एक दिन वह गांधीजी से मिलने के लिए जेल भी आई। महादेवभाई ने उसे देखा। उन्हें वह बड़ी मूर्ख मालूम हुई। उन्होंने गांधीजी से कहा, "इसे कैसे आने दिया जा सकता है ? हम नहीं जानते, यह क्यों आई ? नौकरी की तलाश में या किसी दूसरे काम से ? ऐसा लगता है, जैसे यह एक निर्वासित के तौर पर चली आई है।"

गांधीजी ने कहा, "उसे जरूर बुलवाया जाय। उससे हरिजनों का काम लेना है। वह इसी काम के लिए आई है या नहीं, वह योग्य है या नहीं, उससे मिले बिना इन बातों का निश्चय कैसे किया जा सकता है ?"

वह आई और गांधीजी के पैर पकड़कर कहने लगी, "मैं झूठ बोलकर आई हूं। यहां आने का कारण भी गलत बताया है। रहने की मियाद भी झूठी दी है। मेरे पासपोर्ट की मियाद ८ जुलाई को समाप्त होती है। बापूजी, मैं व्रत लूं तो मुझे आश्रम में भेज देंगे। मेरे लिए तो आप ईश्वर हैं। मुझे हिन्दुस्तानी बना लीजिये। किसीकी दत्तक पुत्री बना दीजिये, नहीं तो मुझे किसी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञावाले के साथ ब्याह दीजिये।"

सुनकर गांधीजी खिलखिला उठे, लेकिन तीसरे ही दिन

उसकी जड़ता स्पष्ट हो गई। गांधीजी मजाक करते हैं, इसलिए वह ईश्वर कैसे हो सकते हैं ? उन्होंने उसे पुरुष जैसी पोशाक पहने की सलाह दी, यह तो असभ्यता है। एक और विदेशी युवती नीला नागिनी वहां थीं। उसका बच्चा महादेव देसाई के कंधे पर चढ़कर खेल रहा था। यह देखकर मार्गरेट चिढ़ गई। वह उठी और बांह से पकड़कर उस बच्चे को जमीन पर पटक दिया। यह देखकर गांधीजी ने कहा, "तुम्हें शर्म नहीं आती। इस तरह बच्चे को पटकते हैं ! यह लड़का है या पत्थर ?"

निर्लज्ज होकर वह बोली, "अपने कुत्ते के साथ भी मैं इसी तरह करती थी। उसे कुछ नहीं होता था।"

गांधीजी ने कहा, "बच्चों और कुत्तों में कोई फर्क नहीं ?"

मार्गरेट बोली, "अपने कुत्ते को मैं बच्चा ही मानती थी।"

इसपर गांधीजी ने कहा, "मेरे खयाल से तुम्हें शादी करने की बड़ी जरूरत है और वह भी उचित ढंग से शादी करने की। ब्रह्मचारी से नहीं, बल्कि बच्चे पैदा करनेवाले से, तभी तुम्हें पता चलेगा कि बच्चा क्या चीज है।"

वह बड़ी निष्ठुर वृत्तिवाली स्त्री थी, लेकिन गांधीजी ने उसे दुत्कारा नहीं। उन्होंने उसको राजनैतिक मामलों में या सविनय भंग में भाग भी नहीं लेने दिया। बस, हरिजन-सेवा की ही तालीम पाती रहे, ऐसा प्रबन्ध कर दिया।

मौत से नहीं लड़ा जा सकता

सन् १९३३ में जब सरकार ने यरवदा-जेल में रहते हुए गांधीजी को हरिजन-कार्य करने के लिए उनकी इच्छानुसार सहूलियतें नहीं दीं तो उन्होंने एक बार फिर उपवास आरम्भ कर दिया। अभी २९ मई को २१ दिन के उपवास पूरे हुए थे कि १६ अगस्त को यह नया उपवास शुरू हो गया। इन तीन महीनों में स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक कैसे हो सकता था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि इस बार शरीर को बहुत कष्ट हो। दो-तीन दिन तो सचमुच ही वेदना बहुत विषम थी। गांधीजी ने स्वयं एक पत्र में इसका वर्णन किया था, "मैं तो आशा छोड़ बैठा था। २३ तारीख (अगस्त) की रात को जब कै हुई तो मुझे ख्याल हुआ कि अब ज्यादा नहीं टिक सकता। मौत से नहीं लड़ा जा सकता। २४ तारीख की दोपहर को तो अपने पास की चीजों का दान भी कर दिया।"

यह सब करने के बाद उन्होंने कहा, "अब कोई मुझसे न बोले और मुझे पानी भी न दे।"

श्रीमती कस्तूरबा गांधी पास में थीं। उन्हें भी जाने के लिए कह दिया। स्वयं आंखें बन्द करके राम-नाम लेने लगे। बेचारी बा स्तब्ध होकर खड़ी रहीं।

दीनबन्धु एन्ड्रूज़ तीन दिन से बम्बई के गवर्नर को समझा रहे थे कि वह गांधीजी को छोड़ दें। अन्ततः वह अपने प्रयत्नों में

सफल हुए और ठीक इसी समय वह गांधीजी को छोड़ने का हुक्म लेकर तेजी से अस्पताल आये। वहां से गांधीजी और बा को अपने साथ लेकर पर्णकुटी चले गये।

धीरे-धीरे गांधीजी की तबीयत सुधरने लगी। उन्होंने घोषणा की कि अगर्चे सरकार ने उन्हें छोड़ दिया है, फिर भी वह एक साल की मियाद पूरी होने तक सीधे तौर पर सविनय भंग की लड़ाई में भाग नहीं लेंगे। सारा समय मुख्यतः हरिजन-कार्य में ही बितायंगे।

इसके बाद वह ऐतिहासिक हरिजन-यात्रा पर निकल पड़े।

: ६ :

सत्याग्रह में मनुष्य को स्वयं कष्ट सहना चाहिए

१९१८ के आरंभ में अहमदाबाद में प्लेग शान्त हो गया। तब मिल-मालिकों ने सोचा कि मजदूरों का प्लेग-बोनस बन्द कर दिया जाय। यह समाचार पाकर बुनाई-विभाग के मजदूरों में खलबली मच गई। युद्ध के कारण मंहगाई बढ़ गई थी, परन्तु वेतन का पचहत्तर प्रतिशत जितना प्लेग बोनस मिलने से उनके रहन-सहन का स्तर गिरा नहीं था। बोनस बन्द हो जाने पर स्थिति फिर बिगड़ जायगी। इसलिए उन्होंने मालिकों के सामने ऐसी मांग रखने का निश्चय किया, जिससे बोनस के बदले वेतन में ही व्यवस्थित वृद्धि करदी जाय।

अनुसूयाबहन इससे पहले तानेवाले मजदूरों की हड़ताल का संचालन कर चुकी थीं, इसलिए बुनाई-विभाग के मजदूर भी उनकी शरण में गये। अनुसूयाबहन को ऐसा लगा कि इसके लिए गांधीजी का मार्ग-दर्शन बहुत आवश्यक है। सौभाग्य से गांधीजी तबतक बिहार से लौट आये थे। उनसे चर्चा हुई और अन्त में उन्होंने पैंतीस प्रतिशत वृद्धि की मांग करने का निर्णय किया।

मिल-मालिकों ने मजदूरों की यह न्याय-पूर्ण मांग स्वीकार नहीं की। तब उन लोगों ने हड़ताल करदी। उसके उत्तर में मिल-मालिकों ने मिलों में तालाबन्दी घोषित करदी। संघर्ष अब तीव्र हो उठा, लेकिन गांधीजी के आदेशानुसार वह शान्त बना रहा।

हड़ताल चलते हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि इसकी खबर अहमदाबाद शहर के बाहर भी सब जगह फैल गई। यह लड़ाई लम्बे समय तक चलेगी, तो मजदूरों को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, यह सोचकर इस लड़ाई के प्रति जिनकी सहानुभूति थी, उन्होंने सुझाया कि मजदूरों की मदद के लिए गांधीजी एक फण्ड स्थापित करें।

इस सम्बन्ध में बम्बई के एक मित्र ने इस राहत कोष में एक बड़ी रकम भेजने की इच्छा प्रकट की। लेकिन जब यह प्रश्न गांधीजी के सामने आया, तो उन्होंने स्पष्ट कहा, "ऐसी मांग कभी स्वीकार नहीं की जा सकती। अहमदाबाद के कुछ मित्र भी ऐसी सहायता करना चाहते थे। यह सच है कि मजदूरों को पैसे की जरूरत पड़ेगी। लेकिन मजदूरों की लड़ाई आम जनता के पैसे से नहीं लड़ी जा सकती। मजदूर गरीब भले ही हों, परन्तु उनमें भी

स्वाभिमान होता है। हमें देखना चाहिए कि उनका यह स्वाभिमान बना रहे। उनमें स्वाभिमान की भावना होगी, तो वे दुःख सहन करके भी लड़ेंगे। सत्याग्रह में मनुष्य को स्वयं कष्ट सहना चाहिए।"

उन्होंने यह भी कहा कि बाहर से मदद मिलने पर मिल-मालिकों का रुख और भी कड़ा हो जायगा। इसलिए किसी भी मदद की आशा रखे बिना केवल अपनी शक्ति से या दूसरा कोई काम करके मजदूर यह लड़ाई लड़ें, तो मालिक समझ जायंगे कि ये लोग टिके रहेंगे, तब उन्हें समझौते का विचार करना पड़ेगा। उन्होंने मजदूरों को मदद पहुंचाने का कोई और तरीका ढूंढ़ने के लिए कहा। बोले, "जरूरत पड़ने पर हम मजदूरों की मदद कर सकते हैं, परन्तु इस तरह के उनके निर्वाह के लिए हम दूसरे किसी अनुकूल काम की व्यवस्था कर दें तब लड़ाई काफी दिनों तक चलाई जा सकेगी और उसके टूटने का कोई भय नहीं रहेगा।"

और अन्त में ऐसा ही किया भी गया।

: ७ :

आटा पीसना बहुत अच्छा है

गांधीजी की एक बहन थी। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे तो उनके पास जो कुछ था वह उन्होंने आश्रम को दे दिया था। भारत लौटे तो यहां भी उन्होंने अपनी सम्पत्ति पर से अधिकार छोड़ दिया था। सबकुछ देकर वह अकिंचन बन गये थे।

लेकिन अब उनकी बहन का क्या हो? वह विधवा थीं। गांधीजी अपने निजी खर्च के लिए किसीसे पैसा नहीं लेते थे। लेकिन बहन का तो कुछ प्रबन्ध होना ही चाहिए। उन्होंने अपने पुराने मित्र डाक्टर प्राणजीवन दास मेहता से कहा कि वह गोकीबहन को दस रुपये महीना भेज दिया करें।

मेहतासाहब रुपये भेजने लगे, लेकिन कुछ दिन बाद गोकीबहन की लड़की भी विधवा हो गई और मां के पास आकर रहने लगी। दस रुपये मासिक में दोनों का गुजारा होना असम्भव था। बहन ने गांधीजी को लिखा, "अब खर्च बढ़ गया है और उसे पूरा करने के लिए हमें पड़ोसियों का अनाज पीसने का काम करना पड़ता है।"

गांधीजी ने उत्तर में लिखा, "आटा पीसना बहुत अच्छा है। दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। हम भी आश्रम में आटा पीसते हैं। और जब जी चाहे, तुम दोनों को आश्रम में आकर रहने और बने सो जन-सेवा करने का पूरा अधिकार है। जैसे हम रहते हैं वैसे ही तुम भी रह सकती हो। मैं घर पर कुछ नहीं भेज सकता। न मित्रों से ही कुछ कह सकता हूं।"

जो बहन आटा पीसने की मजदूरी कर सकती थी, उसे आश्रम का जीवन कुछ कठिन नहीं मालूम होना चाहिए था। लेकिन आश्रम में तो हरिजन भी रहते थे न। उनके साथ रहना-सहना, खाना-पीना यह सब पुराने ढंग के लोग कैसे कर सकते थे? बहन नहीं आई। गांधीजी ने भी उनके लिए पैसों का प्रबन्ध नहीं किया।

मैं तो पैसे का लालची ठहरा

दिल्ली-प्रवास में एक बार गांधीजी का जन्म-दिन आया। नगर के कुछ गुजरातियों ने निर्वासितों के लिए कुछ धन इकट्ठा किया और गांधीजी से तीन बजे अपनी सभा में आने का वचन ले लिया। उन दिनों उन्हें खांसी बहुत अधिक आती थी। सरदार वल्लभभाई पटेल को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने गांधीजी से कहा, "आपको इतनी सख्त खांसी आती है तब फिर आप किसलिए गुजरातियों की सभा में जा रहे हैं? लेकिन आप तो इतने लालची हैं कि अगर आपको पता चले कि अमुक जगह से पैसे मिलनेवाले हैं तो आप मृत्यु-शैया पर से भी उठकर चले जायंगे। पैसा क्या इस तरह इकट्ठा किया जाता है? खों-खों करते हुए सभा में जाने की क्या ज़रूरत है? आप मेरी बात मानेंगे थोड़े ही!"

इतना कहकर सरदार पटेल हँस पड़े। गांधीजी भी हँस पड़े और वह सचमुच ही उस दिन तीन बजे गुजरातियों की सभा में गये। वहां भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "जब नन्दलालभाई ने कहा कि गुजराती लोग मुझसे मिलना चाहते हैं और वे कुछ पैसा भी देंगे तो मैं पैसे का लालची झट फिसल पड़ा। पर मैंने यह नहीं सोचा था कि मुझे भाषण भी देना पड़ेगा।

"दक्षिण अफ्रीका में मुझे मेरी वर्ष-गांठ की कीमत मालूम नहीं थी। हिन्दुस्तान में आकर यह ढोंग शुरू हुआ। लेकिन इसके

साथ चर्खा जुड़ गया है, इसीलिए इसे 'चर्खा द्वादशी' भी कहने लगे हैं। चर्खा अहिंसा का प्रतीक है। लेकिन आज अहिंसा का दर्शन कठिन हो गया है। अब चर्खा द्वादशी किसलिए मनाई जाय ? लेकिन मनुष्य का स्वभाव है कि वह हाथ-पांव तो मारता ही है, भले ही उसका कोई फल आये या न आये।

"मैं इतनी आशा तो रखता हूं कि गुजराती जहां भी होंगे वहां अहिंसा का काम जरूर करेंगे। लेकिन वे चर्खा चलायेंगे या नहीं, इसमें मुझे बड़ी शंका है। चर्खे की खूबियों के बारे में कहां तक कहूं! यहां दिल्ली में और दूसरी जगह जहां-जहां भी गुजराती हैं वहां-वहां वे चर्खे की रक्षा करें तो भी काफी है। आज धर्म के नाम पर लूट-पाट, खून-खच्चर मचा हुआ है। अपनी स्वतंत्रता का हम आज कैसा उपयोग कर रहे हैं, प्रजा में कैसी स्वच्छन्दता और कैसी मनमानी आ गई, मेरी दृष्टि में यह सब बड़े दुःख की बात है।"

इसके बाद उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी की चर्चा की। कहा, "आप हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी उर्दू, दोनों लिपि सीख लें। पैसों के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। उपकार मानता हूं। निराश्रित भाई-बहनों के लिए सर्दी में कम्बलों की बड़ी जरूरत है। यह सब काम हमें ही करना होगा, हकूमत नहीं कर सकती। हम एक-दूसरे की मदद से ही काम चला लें, तो हुकूमत को व्यवस्था करने में आसानी रहेगी।"

विरुद्ध मत रखते हुए भी हम एक-दूसरे को सहन कर सकते हैं

हरिजन-प्रवास के समय घूमते-घूमते गांधीजी अजमेर आ पहुंचे। काशी के स्वामी लालनाथ जहां भी गांधीजी जाते थे, उनसे पहले ही वहां पहुंच जाते थे। वह गांधीजी के हरिजनोद्धार-कार्य के प्रबल विरोधी थे। उनको लेकर तरह-तरह की अफवाहें उड़ती रहती थीं। सुना गया कि स्वामी लालनाथ ने कुछ व्यक्तियों को इसलिए तैनात किया है कि वे गांधीजी पर पत्थर फेंकें। अजमेर के कार्यकर्ता चिन्तित हो उठे, लेकिन जब यह सूचना गांधीजी को मिली तो वह सहजभाव से बोले, "स्वामी लालनाथ के द्वारा ऐसा काम नहीं हो सकता। वह मुझसे कई बार मिले हैं। मैं इस खबर पर विश्वास नहीं कर सकता।"

तभी सूचना मिली कि स्वामी लालनाथ गांधीजी से मिलने के लिए आ रहे हैं। संयोग की बात उनको गांधीजी के पास ले आने का भार श्री हरिभाऊ उपाध्याय पर आ पड़ा। उन्होंने जब स्वामीजी का चेहरा देखा तो पाया, जैसे वह सहज रूप से उग्र विरोध का सूचक है, लेकिन जैसे ही वह गांधीजी के कमरे में आये तो मानों सबकुछ परिवर्तित हो गया। उनका व्यवहार बहुत ही सहज और आदर से पूर्ण था। उस क्षण कोई यह विश्वास नहीं कर सकता था कि दो प्रबल विरोधी बातचीत कर रहे हैं। स्वामी लालनाथ ने गांधीजी से कहा, "जब आप काशी

पधारें तो हम लोगों के पास ही ठहरें। हमारे स्वयंसेवक आपका सब प्रबन्ध और आपकी रक्षा करेंगे।"

उसी सहज भाव से गांधीजी ने उत्तर दिया, "ऐसी योजना मुझे तो प्रिय ही होगी। हम दुनिया को दिखा सकेंगे कि विरुद्ध मत रखते हुए भी हम एक-दूसरे को सहन कर सकते हैं।"

: १० :

केवल सुनी-सुनाई बातें सही मानने के लिए मैं तैयार नहीं

सन् १९२५ में देशबन्धु चित्तरंजनदास की मृत्यु के बाद गांधीजी काफी दिनों तक बंगाल में रहे। वहां के राजनैतिक जीवन में जो नई-नई समस्याएं पैदा हो गई थीं; उनके निराकरण में वह लगे हुए थे। इन्हीं दिनों एक बार सहज भाव से उन्होंने श्री नलिनीरंजन सरकार से कहा, "सवेरे साधारणतया आप किस वक्त जाग जाते हैं ?"

श्री सरकार को यह प्रश्न बड़ा असंगत-सा लगा। शायद गांधीजी ने ऐसे ही पूछ लिया था। उत्तर दिया, "जल्दी ही सोकर उठने की मेरी आदत है।"

गांधीजी बोले, "तो फिर कल भरसक जल्दी उठकर मेरे साथ चले चलना। मुझे आपसे कुछ कहना है।"

सरकार महोदय कुछ भी नहीं जानते थे। इसलिए वह असमंजस में पड़ गये। यह बात सवेरे के समय हुई थी। अचानक

उसी संध्या को फिर दोनों की भेंट हो गई। गांधीजी ने श्री सरकार से कहा, "जिस बात की चर्चा मैं आपके साथ करना चाहता था उसका निपटारा हो गया है। इसलिए अब आपको आने की जरूरत नहीं है।"

और अब उन्होंने उस बात की चर्चा भी की। बंगाल के एक ख्यातनामा व्यक्ति ने, जिन्हें उसी समय वायसराय की कार्यकारिणी का सदस्य नामजद किया गया था, अपने कई दोस्तों के कहने-सुनने पर श्री सरकार के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाये थे। गांधीजी ने उनसे कहा था, "मैं केवल सुनी-सुनाई बातें सही मानने के लिए तैयार नहीं हूं। मुझे सबल प्रमाण चाहिए।"

प्रमाण प्राप्त होने पर जवाबतलब करने के निमित्त ही गांधीजी ने श्री सरकार को मिलने के लिए बुलाया था। किन्तु उससे पहले ये महाशय फिर गांधीजी से मिले और बोले, "चूंकि मेरे मित्र आरोप सिद्ध करने में असमर्थ हैं, इसलिए एक सभ्य पुरुष के नाते मैं क्षमा-प्रार्थी हूं। मैं श्री सरकार से भी क्षमा मांगना चाहूंगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इस निमित्त मैं उन्हें ही आपके घर ले आनेवाला हूं।"

यह सुनकर श्री सरकार का मन भर आया। उन्होंने कहा, "ऐसी निन्दा का अब मैं अभ्यस्त हो गया हूं। इसके अलावा मैं कोई इतना बड़ा आदमी भी नहीं हूं कि वह महाशय मुझसे क्षमा-याचना करें।"

गांधीजी फिर भी अपने साथ उनके घर चलने के लिए श्री सरकार से आग्रह करते रहे। श्री सरकार ने उत्तर दिया,

"मैं स्वयं ही उनसे मिल लूंगा।"

और वह मिल भी लिये।

: ११ :

अच्छा, ले जाओ, तुम्हारी लड़की है

एक लड़की थी। उसके पिता उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह करना चाहते थे। लड़की गांधीजी के आश्रम में आती रहती थी। जब हर प्रकार से प्रयत्न करने के बाद भी वह पिता को न मना सकी, तो उसने अपनी समस्या गांधीजी के सामने रखी। पूछा, "क्या करूं?"

गांधीजी ने कहा, "मेरे पास चली आओ।"

लड़की भागकर वर्धा चली आई। उसके माता-पिता को जब यह समाचार मिला तो वे बहुत क्रुद्ध हुए। तुरन्त वर्धा आये। गांधीजी ने आदेश दिया कि उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जब वे गांधीजी से मिलने के लिए आये तो लड़की को भी वहीं बुला लिया गया। दम्पति ने कमरे में प्रवेश करते ही गांधीजी को झुककर प्रणाम किया। गांधीजी मुस्कराए। कुशल समाचार पूछा। फिर लड़की की ओर देखकर बोले, "यह मेरे पास भागकर आ गई है। इसे ले जाना चाहते हो। अच्छा, ले जाओ, तुम्हारी लड़की है।"

न जाने इन शब्दों में क्या था कि पिता हठात् बोल उठे,

"बापूजी, लड़की आपकी है। भले आपके ही पास रहे।"

गांधीजी तुरंत वत्सल भाव से बोले, "तो अच्छा। इसकी मर्जी है, यहीं रहे।"

: १२ :

जहां संकल्प होता है वहां रास्ता मिल ही जाता है

एक मित्र घर जाने से पहले गांधीजी के साथ कुछ बातें करना चाहते थे। लेकिन सामने आते ही उनका धीरज टूट गया। वह अवाक हो रहे। गांधीजी ने कहा, "बोलो, बोलो, बात करो। महादेव ने मुझसे कहा है कि तुमने बरसों पहले जो व्रत लिये थे, उनके बारे में तुम्हें बातें करनी हैं। मैं तो यह बात भूल ही गया था कि तुमने व्रत लिये थे, पर खैर, बातें करो।"

मित्र में कुछ हिम्मत आई। टूटे-फूटे शब्दों में कहा, "पांच वर्ष पहले मैंने कुछ प्रतिज्ञाएं ली थीं और अब..."

गांधीजी बोल उठे, "और वे पाली नहीं जा सकीं। यही न?"

महादेवभाई बोले, "नहीं, इससे उल्टी बात है।"

गांधीजी ने कहा, "तो ये खुशी के आंसू हैं न?"

पर वह भाई तो मूक ही रहे। उनके चेहरे पर आंसुओं की धारा बहने लगी। गांधीजी ने कहा, "मैंने जब पिता के सामने पहले-पहल अपना अपराध स्वीकार किया तब मेरी जबान नहीं

खुली थी। इसलिए जो कुछ मुझे कहना था, मैंने कागज पर लिख दिया। तुम भी जो कुछ कहना हो, लिख डालो।"

पर वह भाई तो अवाक् ही बने रहे। एक बार तो उन्होंने चले जाना चाहा, फिर थोड़े और आंसू बह जाने के बाद उनमें हिम्मत आई। बोले, "बापू, पांच बरस पहले मैंने अपनी प्रतिज्ञा लिखी थी और आपने उसमें एक शब्द सुधारा था।"

गांधीजी बोले, "पर मैं तो उसे बिलकुल भूल गया हूं।"

पिछली बातें याद दिलाकर उन मित्र ने कहा, "बापू, मुझे अन्तःकरण से घोर युद्ध करना पड़ा है, पर ईश्वर की कृपा से मैं प्रतिज्ञा के अक्षर का और बहुत-कुछ उसके मर्म का भी पालन कर सका हूं।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो बहुत अच्छा हुआ। आंसू आते हैं, यह मैं समझ सकता हूं। ईश्वर जब प्रतिज्ञा पूरी कराता है तब हृदय आभार की भावना से उमड़ पड़ता है।"

मित्र ने कहा, "पर सवाल तो अब है।"

गांधीजी बोले, "कैसे? तुम्हारी मां अधीरता दिखा रही है! मां तो अधीर होगी ही।"

मित्र ने कहा, "हां, आपने जिस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये, उसे तो वह पूरी तरह मानती है। नहीं चाहती कि वह भंग हो। पूछती रहती है कि प्रतिज्ञा कब पूरी होगी। मुश्किल मेरी अपनी ही है। एक बार संकल्प कर डालूं, तो फिर कोई मुश्किल नही होगी। पर बापू, भीतर का यह संग्राम चलाने का कुछ लाभ भी है?"

गांधीजी बोले, "हां, जरूर है। क्या संग्राम कुदरत का

नियम नहीं है, तब आत्मा का तो यह और भी ज्यादा धर्म है। कुदरत में आध्यात्मिक नियम हैं और आध्यात्मिक क्षेत्र में कुदरती नियम हैं। जीवन स्वयं ही एक महासंग्राम है। निरन्तर साधना है। अन्तर में हमेशा तूफान ही रहता है और विकारों से लड़ते रहना शाश्वत धर्म है। गीता ने तीन जगह ये बातें कहीं हैं। तीन से ज्यादा बार भी कही होगी, परन्तु मुझे तीन जगह की कही गई याद हैं। जहां संकल्प होता है, वहां रास्ता मिल ही जाता है।"

मित्र ने कहा, "बापू, मुझे अशीर्वाद दीजिये।"

गांधीजी बोले, "तो तुम्हें जो कुछ लिखना हो, लिख डालो। ठीक होगा तो मैं उसपर दस्तखत कर दूंगा।"

मित्र ने नोटबुक निकाली और ४ जुलाईवाली तारीखवाले पन्ने-पर लिखा, "तुमने जो बात की है, उसका मर्म याद रखना। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारी साधना सफल हो।"

गांधीजी ने ये वचन एक बार पढ़े, दो बार पढ़े, फिर बोले, "एक शब्द जोड़ दूं ?"

और उन्होंने 'साधना' से पहले 'अनिवार्य' शब्द जोड़ दिया। और फिर कांपते हुए हाथ से 'बापू' लिखकर हस्ताक्षर कर दिये। बोले, "हाथ न कांपते होते तो कितना अच्छा! पर कोई बात नहीं। इस सिलसिले में गीता के छठे अध्याय का अन्तिम भाग पढ़ना।"

वह मित्र अनुग्रह मानकर और प्रणाम करके चले गये।

वह सांप भी पहले नम्बर का सत्याग्रही निकला

ज्योंही गांधीजी को स्वामी आनन्द से यह मालूम हुआ कि उनके आश्रम में सांप बहुत अधिक निकलते हैं, उन्होंने 'हाफकिन इंस्टीट्यूट' के कर्नल सोखे से इस संबंध में पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। उत्तर में कर्नल सोखे ने उन्हें सर्प-विद्या के संबंध में सभी साहित्य भेज दिया। उसे पढ़कर गांधीजी की जिज्ञासा और भी बढ़ गई। तभी सेठ जमनालाल बजाज ने उन्हें बतलाया कि वह एक ऐसे साधु को जानते हैं, जिसे इस विद्या का बहुत अच्छा ज्ञान है। उसके पास अनेक प्रकार के सांप हैं और वह अपना प्रयोगात्मक प्रदर्शन भी दिखा सकता है।

गांधीजी वह प्रदर्शन देखने के लिए तुरन्त तैयार हो गये और इस प्रकार वह सपेरा साधु एक दिन मगनवाड़ी में आ उपस्थित हुआ। वह अपने साथ केवल एक ही सांप लेकर आया था। उस दिन वहां कार्य-कारिणी समिति की बैठक थी। सभी सदस्य उस सपेरे को देखकर अचरज से चकित रह गये। मगर गांधीजी उस साधु से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्न पूछने लगे। वह काफी चतुर था, लेकिन उसका ज्ञान कर्नल सोखे से अधिक नहीं था। अंग्रेजी की एक प्रामाणिक पुस्तक का मराठी अनुवाद उसके पास था। जो सांप वह अपने साथ लाया था, वह अधिक जहरीला नहीं था।

लेकिन जिस समय वह सपेरा उस सांप को गांधीजी के गले में लपेटने के लिए आगे बढ़ा तो कार्यकारिणी के सभी सदस्य स्तम्भित और भयभीत हो उठे। गांधीजी ने उसे नहीं रोका और उसने वह सांप उनके गले में लपेट दिया। कड़ा जी करके घबराए हुए सब व्यक्तियों ने उस दृश्य को देखा।

उसके बाद उस साधु ने उस सांप का फन खोलकर उसके विषैले दांत और विष की पोटली दिखलाई। कहा, "अगर कोई खुशी से इस सांप से कटवाना चाहता है तो मैं उसका जहर फौरन निचोड़ दूंगा।"

गांधीजी की ज्ञान-पिपासा तो कभी शान्त होती नहीं थी। किसी भी नये प्रयोग के लिए वह हमेशा तैयार रहते थे, विशेषकर जिसके द्वारा वह दीन-दुर्बलों की सेवा अच्छी तरह कर सकें। इसलिए वह सांप से अपने-आपको डसवाने के लिए तैयार हो गये। परन्तु सभी व्यक्तियों के विरोध करने के कारण साधु महाराज की हिम्मत न पड़ी। दूसरे दो सज्जन आगे आये, लेकिन तब उस सांप ने सत्याग्रह कर दिया और वह किसी भी तरह तैयार नहीं हुआ।

प्रकृति मनुष्य के अपव्यय के लिए पैदा नहीं करती

एक दिन बिड़लाजी ने गांधीजी से पूछा, "आपकी राय में हर मनुष्य को खाने, पहनने और सुख से रहने के लिए कितने व्यय में निर्वाह करना चाहिए ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जितने में सुखपूर्वक स्वस्थ रहते हुए निर्वाह कर सकें।"

बिड़लाजी बोले, "यानी रोटी, दाल, भात, तरकारी, फल, घी, दूध, सूती, ऊनी कपड़े और जूते।"

गांधीजी बोले, "जूते की आवश्यकता मैं इस देश में नहीं समझता। शायद खड़ाऊं की आवश्यकता हो। घी तो ज्यादा नहीं चाहिए।"

बिड़लाजी ने पूछा, "दंत-मंजन, साबुन, ब्रुश इत्यादि ?"

गांधीजी ने कहा, "अरे, इनकी कहीं आवश्यकता हो सकती है ?"

बिड़लाजी ने पूछा, "घोड़ा ?"

सब लोग हँसने लगे। बिड़लाजी बोले, "खैर, आपकी राय में गरीब आदमी का बजट कितने रुपये का होना चाहिए ? सौ रुपये माहवार से कम में कैसे कोई सुखपूर्वक गुजर कर सकता है ? यह मेरे जैसे मनुष्य की बुद्धि से बाहर की बात है।"

श्री हरिभाऊ उपाध्याय वहीं बैठे हुए थे। बोले, "मैंने सोचा-

रण आदमी का बजट बनाकर देखा है। ५० रुपये प्रतिमास काफी हैं।" (यह बात दिसंबर सन् १६२८ की है।)

महात्माजी को पचास रुपये भी अधिक मालूम हुए। उन्होंने कहा, "पच्चीस रुपये माहवार काफी हैं।"

बिड़लाजी बोले, "यह तो असम्भव है।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, जो स्वास्थ्य के लिए चाहिए उतनी सामग्री का तखमीना लगा लो। यदि २५ रुपये से अधिक आता है, तो मुझे क्या उज्र है। किन्तु मैं जानता हूं कि २५ रुपये माहवार हर मनुष्य को खाने को मिल जायं तो यहां रामराज्य आ जाय।"

बिड़लाजी ने पूछा, "और यदि किसीको पचास रुपये से ज्यादा मिल जाय तो?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "ज्यादा मिल जाय तो उसका उपभोग करे, किन्तु वह तो फिजूलखर्ची है। ऐसे मनुष्यों को मैं त्याग का ही उपदेश दूंगा।"

बिड़लाजी ने फिर पूछा, "महात्माजी, यदि प्रत्येक मनुष्य की आय २०० रुपये या इससे भी अधिक प्रतिमास हो जाय, तो आपको क्या उज्र हो सकता है?"

गांधीजी आवेश में भर उठे। बोले, "उज्र नहीं हो सकता! उज्र तो हो ही सकता है। संसार में प्रकृति जितना पैदा करती है, वह तो इतना ही है कि हर मनुष्य को आवश्यक वस्त्र और जीवन-निर्वाह की अन्य आवश्यक सामग्री सुखपूर्वक मिल जाय। प्रकृति मनुष्य के अपव्यय के लिए हरगिज पैदा नहीं करती। इसके माने तो ये हैं कि यदि एक मनुष्य आवश्यकता से अधिक

उपभोग करता है, तो दूसरे मनुष्य को भूखा रहना पड़ता है, इसलिए जो अधिक उपभोग करता है, उसे मैं लुटेरे की उपमा देता हूं। पचास रुपये से अधिक जो अपने लिए खर्च करते हैं, वे लुटेरे हैं। इंग्लैण्ड एक छोटा-सा देश है। वहां के साढ़े तीन करोड़ आदमियों के भोग-विलास के लिए सारा एशिया उजाड़ा जा रहा है। यदि भारत के बत्तीस करोड़ मनुष्य दो सौ रुपये माहवार या अधिक खर्च करेंगे तो संसार तबाह हो जायगा। भगवान वह दिन न लाये कि भारत के लोग अंग्रेजों की तरह उपभोग करना सीखें। यदि ऐसा हुआ तो ईश्वर ही रक्षा करेगा। साढ़े तीन करोड़ की भोग-पिपासा मिटाने के लिए यह देश मरा जा रहा है। बत्तीस करोड़ आदमियों की भूख मिटाने में तो संसार को मरना होगा।"

बिड़लाजी बोले, "महात्माजी, यदि दो सौ या इससे अधिक खानेवालों को आप लुटेरा समझते हैं तब तो मारवाड़ी, गुजराती, पारसी, चेट्टी इत्यादि सब लुटेरे हैं ?"

अत्यन्त गम्भीर स्वर में गांधीजी ने कहा, "इसमें क्या शक है ? वैश्यों के हितार्थ प्रायश्चित्त करने के लिए ही मैंने वैश्यपन छोड़ा है।"

: १५ :

अपने साथियों की भावनाओं का भी तो कुछ ख्याल करेंगे

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अध्यापन मन्दिर में प्रशिक्षण पाने के लिए भारतवर्ष से राष्ट्रभाषा के प्रचारक आते थे। स्वाभाविक था कि उनमें गांधीजी के दर्शनों की उत्सुकता रहती। इसलिए जब भी अवसर मिलता, वे अवश्य ही सेवाग्राम हो आते थे।

एक बार जब ये लोग गांधीजी से मिलने गये, तो उन्होंने अध्यापन मन्दिर की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछा। विद्यार्थियों ने बातों-ही-बातों में असुविधाओं की चर्चा भी की। एक विद्यार्थी ने कहा, "बापूजी, हमारे साथ सीमाप्रान्त के छात्र भी रहते हैं। वे शौच जाते समय पानी नहीं ले जाते। मिट्टी के ढेले ले जाते हैं। हम लोगों को यह बुरा लगता है। उनके साथ रहने और भोजन करने में घिन आती है। आप इन्हें समझा दीजिये।"

उस दल में सीमा-प्रान्त के छात्र भी थे। उनमें से एक ने उत्तर दिया, "हम लोगों को पानी ले जाने की आदत नहीं है। अपने हाथ से मैले को स्पर्श करने में ही हमें गन्दगी लगती है। अंग्रेज लोग भी तो पानी नहीं ले जाते। उन्हें कोई गन्दा नहीं कहता! न कोई उनसे घृणा करता है। फिर हमारे साथ ही यह अन्याय क्यों?"

यह सुनकर गांधीजी मुस्कराते हुए बोले, "आपकी बात ठीक

है। पर आप अपने साथियों की भावनाओं का भी तो कुछ ख्याल करेंगे या नहीं! सरहद प्रदेश में अत्यधिक जाड़ा पड़ने के कारण आप पानी का प्रयोग नहीं करते। लेकिन यहां तो ऐसी स्थिति नहीं है। इसके अतिरिक्त सफाई की दृष्टि से पानी का प्रयोग करना अधिक अच्छा होता है। हम लोग अंग्रेजों की हर बात का अनुकरण थोड़े ही कर सकते हैं! वे लोग अच्छी तरह कुल्ला नहीं करते, इसी कारण उनके दांत बहुत खराब हो जाते हैं। क्या हम भी उनका अनुकरण करके अपने मजबूत दांतों को कमजोर बना लें?"

गांधीजी के इस स्पष्टीकरण से सीमा-प्रान्त के विद्यार्थी समझ गये और वह समस्या आसानी से हल हो गई।

: १६ :

आश्रम के नियमों ने बाप की ममता को जकड़कर रख दिया है

एक दिन सौ० शारदादेवी शर्मा महिलाश्रम से पढ़ाकर घर लौटीं तो दो-तीन बहनों को प्रतीक्षा करते पाया। वह मद्रास से आई थीं और गांधीजी के दर्शन करके उसी दिन लौट जाना चाहती थीं। दर्शन से पहले उन्होंने भोजन करना भी स्वीकार नहीं किया।

शारदादेवी उन्हें अपने साथ लेकर सेवाग्राम की ओर चलीं। लेकिन बातों-ही-बातों में न जाने क्या हुआ कि वे रास्ता भूल

गईं। इधर-उधर भटककर जब वे आश्रम में पहुंची तो मिलने का समय बीत चुका था। एक बन्धु ने उन्हें सलाह दी, "अभी थोड़ी देर में अमतुस्सलाम बहन बापूजी को मठा पिलाने जायंगी। जाकर उनकी खुशामद करो, शायद वह तुम्हें ले जायं।"

शारदादेवी वहीं पहुंचीं। अमतुस्सलाम बहन ने उनकी बात सुनी और हँस पड़ीं। चश्मे के भीतर से उन्हें घूरती हुई बोलीं, "हरकतें तो करती हैं आप लोग, डांट खानी पड़ती है मुझे! सो भी महादेवभाई की! भला यह भी कोई समय है बापू को परेशान करने का!"

लेकिन अनुनय-विनय करने पर वह उन सबको गांधीजी के पास ले गईं। कुटिया का वातावरण गम्भीर था। दरवाजे के ठीक सामने सफेद बिछौना बिछा था। उसके ऊपर एक डेस्क रखी थी। पीछे के खम्भे के सहारे एक लकड़ी का तख्ता था। गांधीजी उसीपर टिके बैठे थे और एक कार्ड पढ़ रहे थे। पास ही एक छोटी-सी तिपाई भी रखी थी। अमतुस्सलाम बहन ने उसी तिपाई पर गिलास रखा कि गांधीजी का ध्यान टूटा। सामने देखा तो शारदादेवी खड़ी थीं। बोले, "अभी कैसे?"

शारदाबहन ने अपनी कहानी कह-सुनाई। सुनकर गांधीजी बड़े जोर से हँसे, लेकिन यह जानकर वह असमंजस में पड़ गये कि ये बहनें अभी तक भूखी हैं और इन्हें आश्रम देखकर अभी लौट जाना है। बोले, "तुमने अपने आने की सूचना पहले से क्यों नहीं दी?"

संकोच के साथ शारदादेवी बोलीं, "बापू, पिता के घर आने वाली बेटियां क्या कभी सूचना देकर आती हैं? मां-बाप के घर

का दरवाजा तो उनके लिए सदा ही खुला रहता है।"

गांधीजी बोले, "यह तो आश्रम है। आश्रम के नियमों ने बाप की ममता को जकड़कर रख दिया है। जाओ, बा की झोंपड़ी में, जो मिले खा लो।"

वे सब लोग वहां से उठकर चली गईं, लेकिन अभी थोड़ी दूर ही गई थीं कि उन्होंने गांधीजी को बा की कुटिया की ओर जाते हुए देखा। दो क्षण बाद एक बहन आई। बोली, "बा रसोई में गई हैं। आप लोग कितने हैं?"

यह सुनकर शारदाबहन चकित रह गईं। आश्रम में सब काम समाप्त हो चुके थे। यह समय आराम का था, पर अब क्या हो सकता था! थोड़ी देर बाद एक बहन उनको भोजनघर के बरामदे में ले गई। पीतल की साफ चमकती हुई थालियों में गर्म-गर्म दो-दो मोटी चपातियां, लाल टमाटर के टुकड़े, गाजर और मूली, ये सब उनके सामने रखते हुए बा बोलीं, "खाओ, साग अभी नहीं बन सकता।"

लेकिन उसकी जरूरत क्या थी? चपातियों पर दो-दो चम्मच शहद पड़ा था। वे बेचारी लाज से गड़ी जा रही थीं कि देखती क्या हैं कि दरवाजे के पास गांधीजी खड़े हैं। हँसते हुए कह रहे हैं, "आज खूब पेटभर खाना। भूख में कैसा भी भोजन हो, अच्छा लगता है।"

शारदाबहन ने उत्तर दिया, "बापूजी, आज का भोजन तो जीवन-भर की खुराक बन गया है।"

बापू बोले, "हां-हां, जो एक बार यहां भोजन कर जाते हैं, वे आश्रम के ऋणी हो जाते हैं और इस ऋण को चुकाते हैं, भाई-

बहनों की सेवा करके। पर याद रखना, फिर कभी बा को तकलीफ न देना, नहीं तो वह मुझसे लड़ेगी।"

और यह कहते हुए वह दूसरे कमरे में गये। वहां से गुड़ उठा लाये और अपने कांपते हुए हाथों से उन चारों को गुड़ परोसा।

: १७ :

तुम तो अब बड़े हो गये

'भारत छोड़ो'-आन्दोलन में भाग लेने के कारण श्रीपाद जोशी कई वर्ष जेल में रहे। छूटने के बाद कुछ दिन उन्होंने घर के लोगों से मिलने में बिताये और फिर दिसम्बर १९४४ में वापस वर्धा पहुंच गये। जिस दिन वहां पहुंचे, उसी रात को वह गांधीजी को प्रणाम करने के लिए सेवाग्राम पहुंचे। लगभग ढाई वर्ष बाद वह उनसे मिल रहे थे। गांधीजी ने उन्हें देखते ही कहा, "अच्छा! तुम तो अब बड़े हो गये।"

श्रीपाद जोशी ने कुछ लजाकर उत्तर दिया, "जी नहीं। बिल्कुल नहीं। मैं तो वैसा ही हूं जैसा दो-ढाई साल पहले था।"

गांधीजी कुछ क्षण के लिए जैसे विचार-मग्न हो गये हों, फिर बोले, "क्यों नहीं। मैंने तुम्हारे बारे में काफी सुना है।"

यह सुनकर श्रीपाद जोशी गम्भीर हो आये। पूछा, "लेकिन यह बताइये कि मैं बड़ा कैसे हुआ!"

गांधीजी ने कहा, "काम से।"

श्रीपाद जोशी बोले, "काम से ! मगर मैंने जो कुछ किया है वह तो आपको पसन्द नहीं !"

गांधीजी ने सहज-भाव से उत्तर दिया, "लेकिन ऐसा थोड़े ही है कि जो काम मुझे पसन्द न हो, वह बड़ा ही न हो। इसीमें तो मेरी परीक्षा है कि जो काम मुझे पसन्द नहीं है, उसके भी बड़प्पन को मैं समझ सकूं और उसकी कद्र कर सकूं।"

श्रीपाद जोशी ने कहा, "अगर हमारे लोगों को यह बात मालूम हो जाय तो वे कितने खुश होंगे !"

(श्रीपाद जोशी और उनके साथियों ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में तोड़-फोड़ का काम किया था और यह समझा जाता था कि गांधीजी उस काम को पसन्द नहीं करते थे।)

: १८ :

आपका अर्थ सही है

१९३२ में गांधीजी जब यरवदा-जेल में थे तब कर्नाटक के दो नवयुवकों ने एक बार किसी मांग को लेकर उपवास करना आरंभ कर दिया। पंद्रह दिन से उन्हें जबरन दूध पिलाया जा रहा था। उनकी मांग थी कि उन्हें ब्राह्मण के हाथ का बना हुआ खाना मिलना चाहिए। गांधीजी और उनके साथी इस मांग को मूर्खतापूर्ण समझते थे। इसलिए कई दिन तक किसीने कुछ नहीं कहा। लेकिन एक दिन गांधीजी ने सुपरिंटेंडेंट से पूछा, "आप किसीको

इन लोगों से मिलने देंगे या नहीं ? हम इन लोगों को इनकी भूल समझाना चाहते हैं।"

सुपरिंटेंडेंट ने उत्तर दिया, "इस तरह तो अनुशासन भंग हो जायगा। अगर यों उपवास करें और उन्हें तुरन्त समझाने को आदमी भेजें तो कैसे चले !"

गांधीजी ने कहा, "मैं यह नहीं कहता कि आप उन्हें ब्राह्मण के हाथ की रसोई दीजिये। मैं तो यह कहता हूं कि उन्हें समझाने के लिए किसीको जाने दीजिये। आपको कर्मचारी की बजाय एक इन्सान की हैसियत से इसे स्वीकार करना चाहिए।"

सुपरिंटेंडेंट ने उत्तर दिया, "अगर मैं इस तरह उन्हें दूसरों से मिलने दूं तो फिर लोग अपने मित्रों से मिलने के लिए उपवास करेंगे। और इन लोगों का क्या उपवास ? मैं मानता हूं कि ये तो छिपे-छिपे खाते होंगे। ऐसा लगता ही नहीं कि ये उपवास कर रहे हों।"

गांधीजी ने कहा, "तब तो मैं कहूंगा कि आपने उन्हें अधिक मनुष्यताहीन बना दिया है। क्या आप यह चाहेंगे कि ये लोग ऐसा करते रहें ?"

बेचारा सुपरिंटेंडेंट कहांतक बहस करता ! उसने गांधीजी को उनसे मिलने की अनुमति दे दी। वह उनसे मिले।

ये दोनों युवक पहली बार ही जेल नहीं आये थे। इससे पहले वे अब्राह्मण का बनाया हुआ भोजन भी खा चुके थे। एक युवक ने कहा, "मेरे भाई की मृत्यु हो गई है। मैंने उसे वचन दिया था कि मैं अब आचार का पालन करूंगा और ब्राह्मण के हाथ का बनाया ही खाऊंगा।"

उसका साथी कैदी के अधिकार की रक्षा के लिए ही उसके साथ हो गया था। गांधीजी ने पहले तो उन्हें समझाया, लेकिन जब उन लोगों ने नियम की बात कही तो वह बोले, "अच्छा, मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूंगा। मगर शर्त यह होगी कि मुझे विश्वास हो जाय कि ऐसा नियम है। अगर ऐसा नियम न होगा, तो तुम्हें मेरा कहना मानना होगा।"

उन्होंने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। अब प्रश्न यह था कि जेल के नियम कैसे देखे जायं। डाक्टर ने बताया कि ऐसा सर्कूलर है कि किसी कैदी को नियम दिये ही न जायं।

गांधीजी बोले, "इसके लिए मुझे लड़ना पड़ेगा।"

मेजर भंडारी भी नियम दिखाने के पक्ष में नहीं थे। गांधीजी के बीच में पड़ने से वह और भी चिढ़ गये। उन्होंने कहा, "मुझे अधिकार नहीं है! आई० जी० पी० की मंजूरी के बिना कुछ नहीं किया जा सकता।"

गांधीजी बोले, "तो आप उनसे पूछ लीजिये।"

बहुत देर तक इसी तरह वाद-विवाद होता रहा। अन्त में सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "अच्छा, तो मैं कल नियम देखूंगा और फिर आपको बताऊंगा।"

महादेव देसाई बोले, "अभी ही मंगवा लीजिये न, जिससे फौरन फैसला हो जाय।"

गांधीजी ने कहा, "जाइये, आपको वचन दिया कि मुझे ज़रा भी लगेगा कि आपका अर्थ लग सकता है, तो मैं उसे मान लूंगा। अगर यह लगा कि दो अर्थों की गुंजाइश ही नहीं और मेरा ही अर्थ सही है तो फिर आप आई० जी० पी० को लिखेंगे।"

वह राजी हो गये। पुस्तक मंगवाई गई। उसमें लिखा था, किसीकी धार्मिक भावना को दुःख पहुंचाने की मनाही है। ब्राह्मण अगर ब्राह्मण की बनाई हुई रसोई का आग्रह करे तो उसे दी जा सकती है। हां, वह केवल तंग करने के लिए ही मांग नहीं करे। ब्राह्मण रसोइया कैदी न हो तो उसे स्वयं बना लेने की छूट होनी चाहिए। मगर जात-पांत की रू से पेश किये जानेवाले अधिकारों के मामले में सुपरिंटेंडेंट को कोई शंका हो, तो उसे आई० जी० पी० से जरूर पुछवाना चाहिए और उनका हुक्म आखिरी माना जायगा।"

गांधीजी ने जब यह पढ़ा तो तुरन्त कहा, "आपका अर्थ सही है।"

गांधीजी की यह न्यायप्रियता देखकर सुपरिंटेंडेंट बहुत प्रसन्न हुआ। उन दोनों युवकों को भी बुलवाया गया और वे भी गांधीजी की बात मान गये। उन्होंने उपवास छोड़ दिया।

: १९ :

किसी रात को तुम्हारा हार चुरा ले जाऊंगा

जुलाई १९४६ में गांधीजी पूना के प्राकृतिक चिकित्सालय में थे। तभी पांच तारीख को श्रीपाद जोशी की पत्नी उनसे मिलने के लिए वहां पहुंचीं। सम्भवतः वह बहुत व्यस्त थे, इसलिए बहुत देर तक प्रयत्न करने पर भी वह अन्दर न जा सकी। प्रार्थना

के समय ही उन्हें अवसर मिला। गांधीजी प्रार्थना के लिए उठ रहे थे कि उन्होंने उनके चरण छुए। बोलीं, "मैं कब की अन्दर आने के लिए छटपटा रही थी, मगर कोई घुसने ही नहीं देता था।"

गांधीजी ने इससे पहले केवल एक बार ही उन्हें देखा था। लेकिन वह तुरन्त पहचान गये। बोले, "आखिर आ तो गई। बड़ी होशियार लड़की हो तुम। इस लगन और होशियारी का प्रयोग तुम्हें अपने सारे जीवन में करना चाहिए। जितना ज्ञान प्राप्त कर सको, प्राप्त कर लो।"

बातें करते-करते सहसा उनका ध्यान जोशीजी की पत्नी के गले में पड़े हुए स्वर्ण हार की ओर गया। वह हार उनका नहीं था। शौक के लिए अपनी चचेरी बहन से मांगकर पहन लिया था। गांधीजी ने उसे देखा, तो उनके अन्दर का दरिद्रनारायण जाग आया। गम्भीर होकर बोले, "यह क्या! तुमने सोने का हार पहना है? हमारा श्रीपाद तो गरीब है। तुम बड़ी चालाक लड़की मालूम होती हो। क्या तुम उसे इसी तरह लूटती हो? क्या तुम बहुत धनी हो? मालदार तो चाहे जिस तरीके से बना जा सकता है। चोरी करके भी लोग अमीर बन सकते हैं।"

और फिर हँसते हुए बोले, "मैं बहुत गरीब हूं। अब किसी दिन रात को आकर तुम्हारा यह हार चुरा ले जाऊंगा।"

उस समय जो व्यक्ति वहां उपस्थित थे वे सब लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े।

सब मारवाड़ी तुम्हारे जैसे ही उदार-हृदय हों

घटना दिल्ली-प्रवास की है। १९३५ का प्रारम्भ था। एक दिन सवेरे के समय एक व्यक्ति गांधीजी के दर्शन करने के लिए आया। उसके पास एक छोटी-सी टीन की संदूकची, बिस्तर का छोटा-सा पुलन्दा, मोटी खादी की मिरजई, खादी की टोपी और खादी की धोती थी। उसने दौड़कर गांधीजी के पैर पकड़ लिये और वहीं पकड़कर रह गया। हटता ही नहीं था। बड़ी कठिनता से उसे उठाकर एक तरफ किया जा सका। उसकी आंखों से प्रेम के आंसुओं की झड़ी लगी हुई थी और उसे अपनी सुध-बुध नहीं थी। अपना सामान उसने एक तरफ फेंक दिया था और वह मारे आनन्द के रो रहा था।

शांत होने पर उसने अपनी टीन की संदूकची खोलकर गीता की पोथी में दबा हुआ सौ रुपये का एक नोट निकाला। सन्दूकची में 'हरिजन सेवक' के अंक थे। एक भजनों की पुस्तक थी। एक जोड़ा खादी के कपड़े थे और उसके हाथ का कता कुछ सूत था। प्रेम-विह्वल होकर नोट और सूत गांधीजी को देते हुए उसने कहा, "मेरी मनोकामना आज पूरी हो गई।"

गांधीजी ने पूछा, "तुम क्या करते हो? मुझे ऐसा याद आता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है। अच्छा, आ कहां से रहे हो?"

उसने उत्तर दिया, "मद्रास से आ रहा हूं। काम तो मैं कुछ

नहीं करता । मैं तो केवल आपका नाम जपा करता हूं ।"

गांधीजी ने पूछा, "पर अगर तुम कुछ भी काम-धन्धा नहीं करते, तो फिर यह सौ रुपये का नोट तुम्हारे पास कहां से आया ?"

उसने कहा, "महात्माजी, मेरे पास अभी कुछ और भी हैं।

गांधीजी बोले, "तब लाओ, वह भी मुझे दे दो ?"

उसने दूसरा एक और सौ रुपये का नोट निकाला और महादेवभाई को दे दिया । गांधीजी बोले, "पर यह तो बताओ तुम आखिर काम क्या करते हो ?"

उसने उत्तर दिया, "मैं पैसेवाला आदमी हूं, पर अब तो फकीर हूं। सब छोड़-छाड़ दिया। अपने तीनों लड़कों में जायदाद बांट दी है । मैं अब निश्चिंत हो गया हूं । सेवा लीजिये, अब मैं स्वतन्त्र हूं । मुझे अपनी टहल में भंगी का काम दे दीजिये । बस, मैं और कुछ नहीं चाहता ।"

गांधीजी ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, तो तुमने इस तरह अपनी सारी सम्पत्ति अपने तीनों लड़कों में बांट दी है और मेरे हिस्से की जायदाद कुछ नहीं छोड़ी है !"

वह बोला, "नहीं, ऐसी बात नहीं है । सर्वस्व आपका ही है । आपके लिए एक हज़ार रुपये लाने का मेरा विचार था। मेरे लड़के ने मुझे एक हजार रुपये दिये तो, पर मन से नहीं । इस साल व्यापार में उसे कुछ घाटा हुआ है । इसलिए बड़ी रकम वह खुशी से कैसे देता ? मैंने उससे कहा, 'मुझे पांचसौ ही चाहिए । बाकी पांचसौ तुम्हें लौटा देता हूं। जब मैं मंगाऊं तब भेज देना !' "

यह कहकर उसने बाकी के सारे नोट निकालकर महादेव-भाई को दे दिये।

गांधीजी बड़े जोर से हँसे और बोले, "पर इस तरह तुम बिना पैसे के वापस कैसे आओगे? कुछ रेल-भाड़े के लिए तो अपने पास रख लो।"

वह बोला, "नहीं, कोई जरूरत नहीं। मैं तार से रुपये मंगा सकता हूं। मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। महात्माजी, सबकुछ आपका ही है। आप ही सब ले लीजिये।"

महात्माजी ने पूछा, "अब तुम क्या करना चाहते हो?"

वह बोला, "करना क्या है? केवल आपकी सेवा में रहना है। अगर सेवा नहीं लेना चाहते, तो मुझे दो दिन यहां ठहर ही जाने दीजिये। फिर मैं अपने देश राजपूताने चला जाऊंगा।"

गांधीजी ने उसे डेरे में ठहरने की आज्ञा दे दी और महादेव-भाई से कहा, "महादेव, ये सब नोट इन्हें लौटा दो। हम यह सब रुपया कैसे ले सकते हैं? या फिर एक नोट रख लो, बाकी सब लौटा दो।"

लेकिन वह स्वाभिमानी क्यों मानने लगा! बोला, "यह ठीक बात नहीं, दी हुई चीज को मैं छुऊंगा भी नहीं।"

महात्माजी बोले, "जितना मैं चाहता हूं, उतना दे दोगे? अच्छा, मुझे एक करोड़ चाहिए, लाओ दो।"

वह अप्रतिभ नहीं हुआ। बोला, "हां, मैं दे दूंगा, पर मुझे भगवान के पास हुण्डी भेजनी होगी। पर वह सांवलिया साह तो नरसी मेहता जैसे भक्तों की ही हुण्डी सकारता है।"

गांधीजी बोले, "बहुत ठीक, क्या ही अच्छा हो कि सब

मारवाड़ी तुम्हारे जैसे ही उदार हृदय हों! तुमने आज मुझे अपना सर्वस्व दे डाला। वे बड़े-बड़े लखपति तो मुझे सौ या हजार रुपये का ही तुच्छ दान देते हैं!"

: २१ :

इन्हें हरिजन बच्चों को दे देना

हरिजन-यात्रा के समय जब गांधीजी बिरला मिल गये, तो वहां के श्रमजीवियों और हरिजन बच्चों ने एक सभा करके गांधीजी को मानपत्र अर्पित किया। वह मानपत्र केले के पत्ते में लपेटकर दिया गया था। यह देखकर गांधीजी बोले, "भाव तो यह अच्छा है, पर अगर फल दे देते, तो मैं खा भी लेता न।"

गांधीजी ने यह बात विनोद में ही कही थी, लेकिन थोड़ी ही देर में फलों की एक टोकरी वहां आ गई। सभा समाप्त हो जाने पर गांधीजी ने उन फलों को देखा और बोले, "फल तो बड़े मीठे जान पड़ते हैं। खा लेने की इच्छा होती है, परन्तु क्या किया जाय। अच्छा, इन्हें हरिजन बच्चों को दे देना। उनके द्वारा मैं खा लूंगा।"

: २२ :

मैं सरकार के साथ अपना सहयोग छोड़ दूंगा

यरवदा-जेल में रहते समय गांधीजी ने मांग की कि हरिजन-कार्य के सम्बन्ध में वह जिससे मिलना चाहें, उन्हें मिलने दिया जाना चाहिए और जिस पत्र को वह छापना चाहें, उसे छापने दिया जाय। लेकिन शुरू-शुरू में सरकार का रुख बहुत अच्छा नहीं था। २५ अक्तूबर, १९३२ के दिन मेजर भंडारी सरकार का उत्तर लेकर आये और सुना गये।

गांधीजी ने लिखा, "अस्पृश्यता के बारे में जिससे मिलना चाहूं, उससे न मिलने दें और लिखे हुए पत्र में से चाहूं वह न छापने दें तो मैं सरकार के साथ अपना सहयोग छोड़ दूंगा और जबतक शरीर चलेगा तबतक सी० क्लास का भोजन लूंगा।"

यह विवाद कई दिन तक चलता रहा। गांधीजी ने उत्तर आने के लिए एक नवम्बर की तारीख निश्चित करदी थी। उन्हें अभी भी आशा थी कि इस प्रश्न का कोई-न-कोई निपटारा हो जायगा। ३१ अक्तूबर को उन्होंने मेजर भंडारी को प्रगतिशील असहयोग क्या है, यह समझाते हुए पत्र लिखा। सरकार के कर्तव्य पर प्रकाश डाला कि या तो वह अस्पृश्यता के बारे में पत्रों और मुलाकात-सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार छाप दें या मेरी मांग और सरकार का इन्कार इन दोनों से जनता को जिस तरह चाहें परिचित करा दें।"

यह पत्र पाकर मेजर भंडारी गांधीजी के पास आये। बोले, "आप असहयोग कुछ दिन और मुल्तवी रखें। और थोड़ी चर्चा करें, तो अच्छा हो।"

गांधीजी बोले, "सरकार के पूछे बिना मैं चर्चा किस तरह करूं?"

मेजर ने कहा, "आप 'सी' क्लास की खुराक लीजिये, मगर यहींपर बनवा लीजिये।"

गांधीजी हँसे। इस भाव से सिर हिलाया कि तब तो जो खुराक लेता हूं, वही न लूं?"

इसपर मेजर ने कहा, "आपका वजन नहीं बढ़ रहा है। ऐसा करने से शरीर की शक्ति जाती रहेगी। पेचिश भी हो सकती है।"

उत्तर में गांधीजी ने लिखा, "मैं नहीं चाहता कि मुझे पेचिश हो, लेकिन होगी तो भोग लूंगा। हां, इसके कुछ भी चिन्ह दिखाई देंगे तो मैं खुराक लेना बिल्कुल बन्द कर दूंगा। असहयोग उत्तरोत्तर बढ़ता चला जायगा। सरकार को कम-से-कम अड़चन में डालने के लिए मैंने यह मार्ग ग्रहण किया है। अछूतपन मिटाने के लिए मैं काम न कर सकूं, तो मैं जी नहीं सकता। मगर सरकार यह चाहे कि अस्पृश्यता-निवारण का काम करने के लिए जीने के बजाय मैं भले ही मर जाऊं तो मैं लाचार हूं।"

उस समय तो मेजर भंडारी चले गये, लेकिन दोपहर को वह फिर समझाने के लिए आये। बोले, "विशेष खुराक नहीं तो उबली हुई दाल, शाक ढाबे से भेजा जायगा, उसे ले लें।"

गांधीजी बोले, "यह खुराक मैं चार दिन से ज्यादा नहीं लूंगा।"

मेजर ने कहा, "खुराक आपको माफिक आये तब भी !"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "हां, यह उत्तरोत्तर बढ़नेवाला असहयोग है। सारा दारोमदार इसपर है कि सरकार का रुख कैसा है ! इतने से सरकार न पिघले, तो मुझे अपनेको अधिक कष्ट देना है। मान लीजिये, वह मुझे मरने दे तो अस्पृश्यता-निवारण का काम बेहद आगे बढ़ेगा। बाहर के लोग मेरे छोटे-से कष्टसहन को बड़ा बना देंगे। दुःख यह है कि सरकार इस कार्य की महत्ता को नहीं समझती। मुझे इस काम के सिलसिले में कितने ही पत्रों के उत्तर देने हैं।"

मेजर ने कहा, "मगर ये लोग तो कह देंगे कि आपको जवाब देने से रोका नहीं गया।"

गांधीजी बोले, "आप शर्तें भूल जाते हैं। मुझे तो यह चाहिए कि इस काम के लिए मेरे जवाब प्रकाशित हों। बहुत-सी अनिष्ट शक्तियां इस समय काम कर रही हैं। इन शक्तियों पर मैं कोई असर न भी डाल सकूं, तो भी इतना तो मैं जरूर कर सकता हूं कि जो लोग इन अनिष्ट शक्तियों के असर में आते हैं, उनपर अपना असर डालूं। अगर मैं यह काम न कर सकूं, तो फिर जीने में मुझे कोई रस नहीं रह जायगा। बीस दिन पहले मैंने जब प्रथम पत्र लिखा तबसे मेरा चित्त इस मामले में क्षुब्ध रहता है। आप समझ सकते हैं कि मुझे कितनी वेदना सहन करनी पडी है ! अब इस वेदना को चार दिन से ज्यादा आगे बढ़ाना शारीरिक दृष्टि से मेरे लिए असंभव है। शायद एक दिन बाद ही यह सम्भव बन

जाय और मैं कल से ही उपवास शुरू कर दूं। या सात दिन तक सह्य हो जाय तो तबतक भी ठहर सकता हूं। इसका आधार इस-पर है कि सरकार मेरे इस कदम का क्या जवाब देती है।"

अगले दिन इस प्रश्न पर चर्चा हो ही रही थी कि मेजर भंडारी फिर आये। उनके पास भारत सरकार का सन्देश था। उसे पढ़कर उन्होंने सुनाया, "भारत सरकार को आपका २४ तारीख का पत्र ३१ तारीख को मिला। इसलिए निर्णय देने में दो-तीन दिन लगेंगे। इस मामले में हम खूब विचार कर रहे हैं। इस बीच मि० गांधी अपने भोजन का अंकुश मुल्तवी रखें तो अच्छा है।"

गांधीजी ने अंकुश को मुल्तवी रखना स्वीकार कर लिया। इस पत्र की भाषा से वह बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इस पत्र को बम्बई सरकार पर जोर का तमाचा माना। जो कुछ भी हो, तीसरे दिन ही भारत सरकार का जवाब आया। उसे पढ़कर गांधीजी ने कहा, "ऐसा अच्छा जवाब सरकार की तरफ से कभी मिला ही नहीं।"

सरकार ने गांधीजी की एक-एक मांग मंजूर करली थी। इतना ही नहीं, मानो जल्दी मन्जूर न करने की माफी भी मांगी। गांधीजी ने अपने पर जो शर्तें लगाईं थीं, उनके पालन के बारे में भी पूरा विश्वास प्रकट किया था।

कीमती गहने पहनना शोभा नहीं देता

१९३३ के नागपुर-प्रवास में गांधीजी भंगियों की बस्ती में भी गये थे। श्री अभ्यंकर और श्रीमती अभ्यंकर ने भंगियों की ओर से उनका स्वागत किया। इसी समय श्रीमती अभ्यंकर गांधीजी के पास आईं और अपनी कलाई से सोने की दोनों चूड़ियां उतारकर उनको देते हुए करुण स्वर में बोलीं, "आजकल पतियों ने अपनी पत्नियों के पास क्या छोड़ा है! इसलिए मैं आपको हरिजन-सेवा के लिए यही कुछ भेंट दे रही हूं।"

गांधीजी ने श्री अभ्यंकर की ओर देखा। उनकी आंखें आंसुओं से तर थीं। इस घटना का उल्लेख करते हुए अपने भाषण में गांधीजी ने कहा, "श्रीमती अभ्यंकर ने अपनी जैसी सैकड़ों बहनों की ओर से जो कुछ कहा, उसका मेरे दिल पर गहरा असर हुआ। मैंने अपने हृदय को पत्थर का बना लिया है। मेरी आंखों से आसानी से आंसू नहीं निकलते। किन्तु इन शब्दों ने मुझे विचलित कर दिया है। मैं मानता हूं कि कितने ही व्यापारियों, डाक्टरों और गृहस्थों को भिखारी बनाने में मैं कारण रहा हूं, पर उसका मुझे दुःख नहीं है, बल्कि खुशी ही है। श्रीमती अभ्यंकर, जो अपने पति का अनुगमन करते हुए भंगियों में ओतप्रोत हो जाना चाहती हैं, सोने की चूड़ियां क्यों पहनें— भारत जैसे गरीब देश में, जहां एक पैसे का अन्न लेने के लिए लोग मीलों से दौड़े आते हैं, जो दीन-दुखियों की चिन्ता रखना चाहता है, उसे कीमती गहने पहनना शोभा नहीं देता।"

मैंने भी यही किया था

ठक्करबापा ने एक पढ़े-लिखे भंगी ब्राह्मण के संबंध में एक लेख लिखा था। पढ़ा-लिखा ब्राह्मण भंगी-पने का काम करे, यह बात निश्चय ही प्रशंसनीय है, परन्तु उस व्यक्ति ने अधिक यश के लोभ में अपनी विद्वत्ता के बारे में अतिशयोक्ति से काम लिया।

लेकिन यह बात कबतक छिप सकती थी। आखिर ठक्कर-बाप्पा को सूचना मिली। उन्होंने पूछताछ करने के बाद वह लेख लिखा और 'हरिजन सेवक' में प्रकाशनार्थ भेज दिया।

महादेव देसाई वह लेख गांधीजी के पास ले गये। उस समय गांधीजी लेटे हुए थे। पास ही कस्तूरबा खड़ी थीं। गांधीजी सब-कुछ सुनकर बोले, "दुःख की बात है। ठक्करबापा का लेख तो छापना ही पड़ेगा। इस व्यक्ति के पिता का पत्र भी छाप दो। इसे ठक्करबापा ने प्रसिद्धि दी थी, इसलिए भूल-सुधार भी उन्हीं को करनी चाहिए। ठगाये तो हम सभी जा सकते हैं, पर ऐसी दशा में अपने ठगाये जाने की बात प्रकाशित किये बिना छुटकारा नहीं।"

उस व्यक्ति का नाम श्री अमल गोस्वामी था। गांधीजी को लगा कि कहीं इसके बारे में कोई बुरी धारणा न बना ले। इस-लिए वह अत्यन्त विनम्र भाव से हँसे। बोले, "मैंने भी क्या ऐसा ही नहीं किया था? जब मैं विलायत पढ़ने गया था तब क्या मैंने

अपनेको अविवाहित सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया था ?"

यह कहकर उन्होंने बा की ओर देखा, पर वह बेचारी तो कुछ समझीं नहीं, चकित होकर गांधीजी की ओर देखती रहीं। इसपर गांधीजी बोले, "इन बेचारी को कुछ खबर नहीं है। यह तो इतनी भली हैं कि इन्होंने मुझे माफ ही नहीं कर दिया, बल्कि उस बात को भूल भी गईं।"

बा को अब भी कुछ याद नहीं आया। तब महादेव देसाई ने उनसे कहा, "बा, बापूजी लगभग पचास वर्ष पुरानी बात कह रहे हैं। 'आत्मकथा' में इन्होंने इसका विस्तार से वर्णन किया है।"

फिर गांधीजी ने वह सारी कहानी कह-सुनाई। बा बोलीं, "हां, अब कुछ याद आता है।"

गांधीजी बोले, "मैंने ठीक कहा था न ? तुम इतनी भली हो कि तुमने मुझे माफ तो कर ही दिया, पर इस सारी कहानी को भी भूल गई हो।

कस्तूरबा खिलखिलाकर हँस पड़ीं। गांधीजी अपना बचाव करते हुए बोले, "मैं अकेला ही ऐसा नहीं करता था। उस समय बहुत-से युवक ऐसा ही किया करते थे। छोटी अवस्था में ही भारत से विवाहित होकर वे विलायत जाते थे और वहां इतनी आयु-वाला कोई विवाहित लड़का मिलता नहीं था। अपने-आपको विवाहित बताने में उन्हें देश की लाज जाती हुई दिखाई देती थी। इसलिए वे सब अपनेको अविवाहित बताते थे। यही बात मेरे संबंध में थी। मैं तो घर पर स्त्री ही नहीं, एक बच्चा भी छोड़ गया था।"

लेकिन तुरन्त उन्होंने फिर कहा, "मैंने देश की लाज रखने के लिए नहीं, बल्कि कुआरी लड़कियों के साथ घूम-फिर सकने के लिए ही झूठ बोला था !"

इतना कहकर गांधीजी गम्भीर हो गये।

: २५ :

अपने जैसे आदमी मिल जाते हैं तो हमेशा आनन्द होता है

नोआखाली-प्रवास में घूमते-घूमते गांधीजी एक दिन आता-खोरा गांव पहुंचे। शाम को वह एक बूढ़े के घर गये। बूढ़ा बहरा था। शरीर से अशक्त था, परन्तु गांधीजी के आने पर वह उठकर खड़ा हो गया। गांधीजी ने बड़े प्रेम से उसके गाल पर चपत लगाई, तभी उसकी पत्नी वहां आ गई। उसके पास कपूर की दो मालाएं थीं। एक उसने बूढ़े को दी, दूसरी अपने पास रखी। फिर उन दोनों ने गांधीजी को वे मालाएं पहनाईं। बुढ़िया कांप रही थी। उसने गांधीजी के हाथ पकड़ लिये। अपने सारे शरीर पर लगाए, मानो बड़ी पावनता अनुभव की। उसने दो मीठे नारियल खासतौर से रख छोड़े थे। उन्हें ले आई और उनका पानी पीने का आग्रह करने लगी।

यह दृश्य देखकर मनु को शबरी के बेरों की याद आ गई। जैसे प्रेम से प्रभु राम ने शबरी के बेर खाये थे वैसे ही प्रेम से गांधीजी ने नारियल का पानी पिया। शाम को खाने के बाद वह

कुछ भी नहीं लेते थे, लेकिन प्रेम से दिये हुए नारियल के पानी को वह अस्वीकार नहीं कर सके। एक नारियल का पानी स्वयं पिया, दूसरे का मनु को पिलाया। वह पानी पीते समय उनके मुख पर अद्भुत आनन्द झलक आया था।

वहां से लौटकर वह अपने-आप ही बोल उठे, "अपने जैसे आदमी मिल जाते हैं तब हमेशा आनन्द होता है। ये दोनों बूढ़े-बुढ़िया अस्सी के आस-पास तो होंगे ही, शायद कुछ बड़े हों!"

: २६ :

तेरे इन आभूषणों की अपेक्षा तेरा त्याग ही सच्चा आभूषण है

मालाबार (केरल) की बात है। वहां बड़गरा नाम के एक गांव में सभा का आयोजन किया गया। गांधीजी ने अपने भाषण में सभा में उपस्थित सभी बहनों से जेवर की भीख मांगी। बहुत-सी वस्तुएं भेंट में मिलीं। अपना भाषण समाप्त करके गांधीजी उनका नीलाम करने लगे। इसी समय कौमुदी नाम की १६ वर्ष की एक लड़की धीरे-से मंच पर चढ़ आई। उसने एक हाथ की सोने की चूड़ी उतारी और उसे गांधीजी को देते हुए बोली, "आप मुझे हस्ताक्षर देंगे?"

गांधीजी हस्ताक्षर कर रहे थे कि उसने दूसरे हाथ की चूड़ी भी उतार दी। यह देखकर गांधीजी ने कहा, "अरी पगली लड़की, दोनों चूड़ियां देने की जरूरत नहीं है। एक ही चूड़ी लेकर मैं

तुझे अपने हस्ताक्षर दे दूंगा।"

इसके उत्तर में कौमुदी ने अपने गले का स्वर्णहार उतार लिया। गुंथी हुई लम्बी वेणी में उलझे हार का निकालना सहज नहीं था, पर कौमुदी तो मालाबार की निर्भय बाला थी। उसे सहस्रों नर-नारियों के आगे वेणी में से हार निकालने में तनिक भी संकोच नहीं हुआ। दांतों तले उंगली दबाए सब लोग देखते रहे। गांधीजी ने पूछा, "तूने अपने माता-पिता से आज्ञा ले ली है ?"

बिना कोई उत्तर दिये उसने कानों में से रत्नजड़ित बुन्दे भी निकाल लिये। जनता की हर्ष-ध्वनि से सभा-स्थान गूंज उठा। गांधीजी ने फिर पूछा, "तूने इन आभूषणों को देने के लिए अपने माता-पिता से आज्ञा ले ली है न ?"

कौमुदी कुछ उत्तर देती, इससे पहले ही किसीने कहा, "इसका पिता तो यहींपर है न। मानपत्रों की नीलामी में वही तो बोली लगवाकर आपकी मदद कर रहा है। वह भी अपनी लड़की की तरह अच्छे कामों में दिल खोलकर रुपया देनेवाला आदमी है।"

अब गांधीजी ने कौमुदी से कहा, "तुम्हें यह तो मालूम होगा कि ये गहने दे देने के बाद अब फिर नये गहने नहीं बनवा सकोगी।"

कौमुदी ने यह शर्त दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर ली। गांधीजी ने हस्ताक्षर करने के बाद यह वाक्य और लिख दिया, "तेरे इन आभूषणों की अपेक्षा तेरा त्याग ही सच्चा आभूषण है।"

: २७ :

आज मैंने कौमुदी तुझे पाया

गांधीजी जिस दिन कालीकट से चलनेवाले थे, उस दिन कौमुदी अपने पिता के साथ गांधीजी के दर्शन करने आई। वड़गरा में इस लड़की ने अपने आभूषण दे दिये थे। गांधीजी ने इस निश्छल लड़की से पूछा, "क्या तू घर से ही आभूषण त्यागने का निश्चय करके चली थी या उसी सभा में अपना यह निर्णय कर लिया था?"

उत्तर दिया उसके पिता ने। बोले, "घर से ही निश्चय करके आई थी। हम लोगों से इसने पूछ लिया था।"

गांधीजी बोले, "पर यह तो बता, तेरी मां तुझे इस तरह आभूषणविहीन देखकर नाराज तो नहीं है?"

कौमुदी ने उत्तर दिया, "नाराज भले हों, पर मुझे विश्वास है कि वह मुझे गहने पहनने के लिए कभी बाध्य नहीं करेंगी।"

गांधीजी बोले, "लेकिन तेरा विवाह तो अब होगा ही। तेरे पति को तेरा यह आभूषण-संन्यास अच्छा न लगे। उस अवस्था में तू क्या करेगी? मेरे सामने एक नैतिक कठिनाई है। तेरे इस अद्भुत आभूषण-त्याग पर मैंने 'हरिजन' के लिए एक लेख लिखा है। मैंने उसमें लिखा है कि तू अब कभी आभूषण नहीं पहनेगी। अगर तू ऐसा करने को तैयार नहीं है, तो उस लेख का वह अंश मैं बदल दूंगा। दो बातें हैं। या तो अपने भावी पति की इस इच्छा का तुझे सामना करना पड़ेगा, एक मालावारी वाला

के लिए यह कठिन नहीं है, या फिर तुझे अपने लिए एक ऐसा वर ढूंढ़ना होगा जो तेरे आभूषण-संन्यास का विरोधी न हो। स्पष्ट बात जो हो मुझसे कह दे।"

गांधीजी की बातें सुनकर कौमुदी कई क्षण तक उनपर विचार करती रही, फिर उसने केवल एक वाक्य कहा, "मैं ऐसे ही वर को पसंद करूंगी जो मुझे गहने पहनने के लिए बाध्य नहीं करेगा।"

गांधीजी की आंखें डबडबा आईं। बोले, "अबतक मैंने अन्नपूर्णा को ही ऐसा पाया था। उसका विवाह हो चुका था, फिर भी उसने अपने त्याग के अनन्तर आभूषणों का कभी स्पर्श तक नहीं किया। अन्त तक अपना वचन निभाया। आज मैंने कौमुदी तुझे पाया।"

: २८ :

मैं तो उसीको सुन्दर कहता हूं जो सुन्दर काम करता है

सन् १९३४ के प्रवास में त्रिवेन्द्रम में एक दिन एक सत्तरह वर्ष की लड़की गांधीजी के दर्शन करने आई। उसे देखकर उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो ?"

उसने जवाब दिया, "एक छोटी-सी लड़की।"

वह लड़की बहुत सारे जेवर पहने हुए थी। यह देखकर गांधीजी बोले, "एक छोटी-सी लड़की का इन गहनों से क्या प्रयोजन है ?"

उस लड़की का नाम था मीनाक्षी। उसने जवाब दिया, "क्योंकि मैं चाहती हूं कि मैं ऐसी ही एक छोटी-सी लड़की बनी रहूं।"

गांधीजी बोले, "तब तो तुझे गहने नहीं पहनने चाहिए।"

और उन्होंने कौमुदी के आभूषण-संन्यास की कहानी सुनाते हुए कहा, "देखो, वह बेचारी कौमुदी भी तो १६ वर्ष की थी। तो भी उसने अपने तमाम गहने उतारकर मुझे दे दिये। तुम तो उससे एक वर्ष बड़ी हो।"

मीनाक्षी की आंखें चमक उठीं। बोली, "तो मैं भी अपने सारे आभूषण उतारकर दे देना चाहती हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "तुमने अपने माता-पिता की आज्ञा ले ली है न?"

मीनाक्षी बोलीं, "आज्ञा तो मिल ही जायगी।"

गांधीजी ने कहा, "मैं जानता हूं कि मालाबार की लड़कियां स्वतंत्र प्रकृति की होती हैं।"

मीनाक्षी ने पूछा, "तो क्या ये गहने आपको दे दूं?"

गांधीजी बोले, "हां, हरिजनों को दे दो। अगर तुम मुझे एक सच्चा हरिजन समझती हो तो लाओ, मुझे ये गहने दे दो और अगर मैं तुम्हारी दृष्टि में एक पाखण्डी हूं तो फिर मुझे ये गहने मत दो। मैं तो सभी लड़कियों को गहने देने के लिए ललचाया करता हूं। मैं जानता हूं कि लड़कियों के लिए यह त्याग कितना कठिन है। हमारे समाज में आज अनेक प्रकार के फैशन देखने में आते हैं, पर मैं तो उसीको सुन्दर कहता हूं, जो सुन्दर काम करता है।"

मीनाक्षी बोली, "और अगर मैं अपने-आपको ही दे दूं तो?"

गांधीजी ने कहा, "हां, तुम्हारी बहन तो है ही, अब तुम भी मेरे पास रह सकती हो। लेकिन मैं तुम्हें सोचने-समझने के लिए एक रात का समय देता हूं।"

दूसरे दिन मीनाक्षी फिर आई। उसके शरीर पर एक भी गहना नहीं था। उसके पिता पर बहुत कर्ज था। वह कर्ज चुकाने के लिए उसने अपने सब गहने पिताजी को दे दिये थे और उसने निश्चय कर लिया था कि वह फिर कभी जेवर नहीं पहनेगी। उसके पिता उससे सहमत थे, पर मां को राजी करना कुछ कठिन मालूम देता था। इसलिए एक दिन फिर वह अपने माता-पिता के साथ गांधीजी के पास आई और उसने हरिजन-कार्य के लिए एक सोने की चूड़ी और गले का हार दिया। गांधीजी को सबकुछ मालूम हो चुका था। उन्होंने उसके पिता से कहा, "आप मुझे ये चीजें मत देना। मीनाक्षी के गहने से जितना कर्ज चुका सकते हैं चुका दें। मेरी लड़की फिर कभी आपसे जेवर नहीं मांगेगी।"

मीनाक्षी के गालों पर आंसुओं की धारा बह रही थी। गांधीजी फिर उसकी माता की ओर मुड़े। बोले, "अपनी बेटी के इस अद्भुत त्याग पर आशीर्वाद देने में आपको क्या आपत्ति है?"

मां ने उत्तर दिया, "अभी इसका विवाह करना है न? और हमारे लिए ऐसे वर की खोज करना बड़ा कठिन हो जायगा, जो इसे बिना आभूषणों के अंगीकार कर ले।"

मीनाक्षी के आंसू पोंछते हुए गांधीजी बोले, "इसकी आप-

लोग चिन्ता न करें। समय आने पर एक नहीं, ऐसे पचास वर मैं मीनाक्षी के लिए ढूंढ़ दूंगा। फिर उनमें से आप जिसको चाहें चुन लेना।"

अब मां ने मीनाक्षी को सहर्ष आशीर्वाद दे दिया।

: २९ :

यह लड़की मेरी हजामत बनाने से शर्माती है

गांधीजी उस दिन स्नान-गृह में ही थे कि राजाजी आ गये। एक क्षण-भर भी तो उन्हें चैन नहीं मिला। एक के बाद एक मिलनेवाले आते रहे। स्नान-गृह में ही राजाजी के लिए कुर्सी लगवाई गई। गांधीजी गर्म पानी के टब में लेटे हुए थे। उन्हें राजाजी के साथ बातें करनी थीं। इसलिए मनु से कहा, "मेरी हजामत बना दो।"

मनु ने उत्तर दिया, "आज तो राजाजी बैठे हैं। मेरा हाथ कांप जाय और उस्तरा लग जाय तो? कल से करूंगी।"

गांधीजी विनोद के स्वर में राजाजी से बोले, "आप बैठे हैं, इसलिए यह लड़की मेरी हजामत बनाने से शर्माती है।"

राजाजी ने उत्तर दिया, "मूर्ख है। आजकल तो नाई प्रति-दिन पांच रुपये कमाते हैं। बढ़िया-से-बढ़िया धन्धा हजामत का है। और अगर बापूजी बिना फीस के सिखलाते हों, तो सीख लेने जैसा धंधा है। तुम्हें कोई काम-धंधा न आता हो, तो हेयर कटिंग

सैलून खोलकर ऊपर लिख देना, "सर्टीफाइड बाई महात्मा गांधी।' फिर तुम्हारा धंधा धड़ल्ले से चल निकलेगा और भूखों मरने की नौबत नहीं आयगी। बापूजी की नाइन बनना भी बड़े सौभाग्य की बात है। समझी!"

फिर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। अन्त में कांपते हाथों से मनु ने गांधीजी की हजामत बनाई। सौभाग्य से कहीं भी उस्तरा नहीं लगा और पहले ही दिन राजाजी ने पीठ थपथपाकर शाबाशी का प्रमाण-पत्र दे दिया।

: ३० :

ईश्वर की मुझपर कैसी अपार दया है

गांधीजी दिल्ली की भंगी बस्ती में ठहरे हुए थे। मई का महीना था। बाजार में आम आ गये थे। उस दिन मनु ने गांधीजी के लिए एक गिलास में आमों का रस निकाला और उनके पास ले गई। उन्होंने पूछा, "आम क्या भाव के थे?"

मनु ने समझा कि गांधीजी मजाक कर रहे हैं। उसने प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, दूसरे काम में लग गई। लेकिन जब थोड़ी देर बाद वह फिर गांधीजी के पास गई तो पाया कि रस वैसे ही रखा हुआ है। उन्होंने पीया नहीं। बोली, "रस पी लीजिये न, बापू।"

गांधीजी ने पूछा, "आम किस भाव के थे, यह तूने पता लगाया?"

मनु क्या जवाब देती ! गांधीजी फिर बोले, "मैं तो समझता था कि तू आमों की कीमत पूछ कर आयगी। कीमत पूछने के बाद ही मुझे आम खाने को देने चाहिए। तूने ऐसा नहीं किया। मेरे कहने पर भी नहीं किया। मैंने सुना है कि बाजार में दस आने का एक आम बिकता है। अगर ऐसा है, तो मैं बिना आम खाये भी जीवित रह सकता हूं। ऐसे महंगे फल खाने से मेरा खून बढ़ता नहीं, घटता है। ऐसी भयंकर महंगाई के समय तूने मेरे लिए आम के रस का एक पूरा गिलास भर दिया! चार आमों का मूल्य ढाई रुपये होता है। एक गिलास रस ढाई रुपये का हुआ। यह रस मैं भला किस मुंह से पी सकता हूं!"

यह कहते-कहते गांधीजी बहुत गम्भीर हो उठे। तभी दो निराश्रित बहनें उन्हें प्रणाम करने आईं। उनके साथ दो बालक भी थे। गांधीजी ने उन्हें प्यार से अपने पास बुलाया और दो कटोरियों में करके वह रस उन्हें पीने के लिए दे दिया। फिर बोले, "ईश्वर मेरी मदद पर है, यह उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। मैं मन में बड़ा दुखी था। सोच रहा था कि मैं कहां पड़ा हूं। मुझमें ही कहीं कोई-न-कोई बुराई है, नहीं तो तुझे मेरे लिए इतने महंगे आमों का रस निकालने की बात कैसे सूझती ! लेकिन मुझे इस दोष से बचाने के लिए भगवान ने इन दो भोले बालकों को भेज दिया। बालक भी वैसे ही भेजे, जैसों की मैं इच्छा रखता था। तू देख तो सही, ईश्वर की मुझपर कैसी अपार दया है!"

मनु गांधीजी की इस व्यथा से थर-थर कांप आयी। लेकिन इसी प्रकार तो वह उनकी वेदना को समझ सकी थी।

मैं खूब दौड़ता था जिससे शरीर में गर्मी आ जाती थी

उस दिन गांधीजी श्रीमती अरुणा आसफअली के साथ वाइ-सराय से मिलने गये हुए थे कि पंडित जवाहरलाल नेहरू भंगी-बस्ती में आ पहुंचे। एक कोने में कूदने की रस्सी रखी हुई थी। बस, उसे उठाकर कूदने लगे। मनु से बोले, "तुम्हें रोज सवेरे सौ बार कूदना चाहिए और ऊपर से दूध पी लेना चाहिए। इससे तुम पहलवान बन जाओगी। फिर बुखार कैसे आ सकता है? और तुम्हारे जैसी जवान लड़की को जुकाम भी क्यों हो!"

ये बातें हो ही रही थीं कि गांधीजी ने कमरे में पैर रखा। जवाहरलालजी के हाथ में रस्सी देखकर बोले, "क्या दोनों कूदने की होड़ लगा रहे हो?"

सब लोग हँस पड़े। हँसते-हँसते जवाहरलालजी बोले, "इस लड़की को रस्सी कूदने के लाभ बता रहा था। वह इस प्रकार करे तो जुकाम और बुखार, जो इसे बार-बार परेशान करते हैं, भाग जायँ। इसे आसन भी करने चाहिए।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "बिलकुल सच बात है। जब मैं इंगलैण्ड में था तो मेरे पास बहुत गर्म कपड़े नहीं थे। वहां बड़ी सख्त सर्दी थी, फिर भी नहाये बिना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए मैं खूब दौड़ता था, जिससे शरीर में गर्मी आ जाती थी। मैं वहां अपना स्वास्थ्य बढ़िया रख सका, तो केवल कसरत के

प्रताप से ही। लोगों का यह बिचार था कि यदि मैं मांसाहारी नहीं बनूंगा, तो काम नहीं चलेगा।"

: ३२ :

मैं तुमसे भूत की तरह काम लेता हूं

बिहार-प्रवास में एक दिन गांधीजी का वजन लिया, तो एक सौ आठ पौण्ड निकला। दिल्ली में एक सौ बारह पौण्ड था। शायद कांटे में फर्क हो। लेकिन चार पौण्ड का फर्क कैसे हो सकता है? गर्मी के कारण वजन घटा है। गांधीजी ने खुराक बहुत कम करदी थी। मनु का वजन तो बहुत ही कम था, कुल ८७ पौण्ड। उन्होंने पहले भी कई बार मनु का वजन करवाया था। सहसा उन्हें पांच वर्ष पहले की आगाखां महल की बात याद आ गई। बोले, "तुम्हें याद है कि आगाखां महल में तुम्हारा वजन एक सौ छः पौण्ड था, अब १९ पौण्ड कम है। इसका अर्थ है कि मैं तुमसे भूत की तरह काम लेता हूं। या फिर तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखतीं।"

सुनकर मनु स्तब्ध रह गई। पांच वर्ष पहले की बात वह भूल गई थी। धीरे-से बोली, "इधर नक्सीर बहुत फूटती है और गर्मी भी बहुत है। आप भी तो चार पौण्ड घट गये हैं!"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम ७८ वर्ष की नहीं हो। होतीं तो शायद मैं तुम्हारी दलील पर ध्यान भी देता, लेकिन अब इतना याद रखना कि जबतक तुम्हारा वजन सौ पौण्ड नहीं हो

जाता, तबतक मैं तुम्हें बेकार समझूंगा। तुम्हारा वजन इतना घट गया होगा इसकी तो मुझे कल्पना भी न थी। सूख जरूर गई हो, लेकिन वजन इतना घट गया है यह तो, आज अगर तुम्हारा वजन न लिया होता तो मुझे मालूम ही न होता।"

गांधीजी स्पष्ट ही नाराज थे, इसलिए मनु ने मौन का सहारा लेना ही अच्छा समझा।

: ३३ :

हमारी सभ्य पोशाक तो धोती-कुर्ता है

गांधीजी से यरवदा-जेल में मिलने के लिए एक बार सेठ जमनालाल बजाज कैदी की पोशाक पहनकर आये। उन्होंने बताया कि वह छूट तो गये हैं, परन्तु चूंकि यह मानते हैं कि वह एक बड़े कैदखाने में हैं, इसलिए यह पोशाक पहनी है।

गांधीजी बोले, "यह भावना इस पोशाक को पहनकर नहीं बताई जा सकती। ऐसे तो बहुत-से लोग इस पोशाक को पहनकर बच जाना चाहेंगे। इस तरह लोगों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींचना चाहिए। हमें अपनी साधारण पोशाक ही पहननी चाहिए। हां, यदि तुम इस पोशाक को आदर्श मानते हो और हमेशा के लिए ग्रहण करने के लिए तैयार हो तो बात दूसरी है। वैसे सच बात तो यह है कि यह पोशाक भी अंग्रेजों की नकल ही है। हमारी सभ्य पोशाक तो धोती-कुर्ता है। मैं यह भी नहीं मानता कि जांघिया पहनने से खर्च बहुत बच जाता है।"

और उन्होंने जमनालालजी को धोती-कुर्ता पहनने की ही सलाह दी।

: ३४ :

अपने लिए लाभदायक मौके को कोई छोड़ता है भला !

बिहार-प्रवास में मनु का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। उस दिन भी उसे बुखार था। वह दिन में साढ़े बारह बजे सो रही थी। उसे सोता देखकर बापूजी ने स्वयं चर्खा तैयार किया और कातना शुरू कर दिया। वह कात ही रहे थे कि मनु जाग उठी। वास्तव में वह चर्खा तैयार करने के लिए ही चौंककर जाग पड़ी थी। यह देखकर बापूजी खिलखिलाकर हँसने लगे। बोले, "और थोड़ी देर सो जाओ तो मुझे ज्यादा अच्छा लगे।"

मनु ने पूछा, "लेकिन आपने मुझे जगाया क्यों नहीं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मुझे देखना था कि मैं चर्खा तैयार कर सकता हूं या नहीं। मुझे यह अच्छा मौका मिल गया। अपने लिए लाभदायक मौके को कोई छोड़ता है भला! तुम्हें स्वयं गहरी नींद में सोते हुए देखकर मैं बहुत खुश हुआ।"

यह कहकर उन्होंने मनु का कान पकड़ लिया। वह तुरन्त समझ गये कि उसे बुखार चढ़ा हुआ है, लेकिन वह आराम कर रही थी, इसलिए उनकी नाराजी से बच गई। इतना ही नहीं, उन्होंने मनु के साथ विनोद भी किया।

मुझे 'महात्मा' शब्द में बदबू आती है

एक बार बम्बई के श्री जमनादास एक सभा में बोलने के लिए खड़े हुए तो कुछ लोगों ने उनके साथ अशिष्टता का व्यवहार किया। गांधीजी भी उस सभा में थे। यह देखकर वह खड़े होगये और बोले, "किसी सभा में कैसे व्यवहार करना चाहिए, यह हमें जानना आवश्यक है। सभा में जिसे बुलाया है, उसका स्वभाव कैसा है, यह भी जानना चाहिए और उसके अनुकूल ही व्यवहार करना चाहिए। ऐसा न कर सकें तो बेहतर है, वहां न जायं। कुछ भाइयों ने इस सभा में इस नियम का उल्लंघन किया है। भाई जमनादास ने जो कुछ कहा वह अक्षरशः सही था। 'महात्मा' के नाम से बहुत-से बुरे काम हुए हैं। मुझे महात्मा शब्द में बदबू आती है और इसपर भी जब कोई आग्रह करता है कि सब लोग मुझे महात्मा कहें, तब तो मैं घबरा जाता हूं। मुझे जीना अच्छा नहीं लगता। मैं यदि यह न जानता होता कि ज्यों-ज्यों मैं महात्मा शब्द का इस्तैमाल करने से इन्कार कर देता हूं, त्यों-त्यों उसका अधिक उपयोग होता जाता है, तब मैं जरूर इन्कार कर देता। आश्रम में प्रत्येक बालक और भाई-बहन को आज्ञा है कि वे 'महात्मा' शब्द का प्रयोग न करें। भाई जमनादास को रोकने-वालों ने मेरे प्रति अविनय किया। हमारी लड़ाई शान्ति की है और शान्ति बिना विनय के नहीं होती।

इतना सुनने के बाद एक भाई ने सामने की पहली गैलरी में

खड़े होकर प्रणाम किया और क्षमा मांगी। गांधीजी बोले, "इतना काफी है, परन्तु अभी एक-दो भाई और हैं। क्या वे क्षमा नहीं मांगेंगे? नहीं मांगेंगे तो मैं कहूंगा कि वे स्वराज्य के योग्य नहीं हैं।"

तभी सभा में से आवाजें आईं, "खड़े होकर क्षमा मांगो।"

दो आदमी और खड़े हुए और उन्होंने क्षमा मांगी। गांधीजी को कुछ शान्ति हुई। उन्होंने फिर बोलना शुरू किया, क्योंकि अभी एक भाई शेष थे। आखिर उन्होंने भी खड़े होकर क्षमा मांग ली।

: ३६ :

जड़ भरत की तरह खाती हो

बिहार-प्रवास में गांधीजी पटना से रोज किसी-न-किसी गांव जाते थे और फिर वापस लौट आते थे। उस दिन वापस लौटते-लौटते दस बज गये। आते ही मालिश की तैयारी की। बारह बजे बाद गांधीजी ने भोजन किया। मनु के सामने धोने के लिए कपड़ों का ढेर लगा हुआ था। तीन बजे तक वह छुट्टी पा सकी। सवा तीन बजे खाने के लिए बैठी। खोपरा और लीची के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा था। जल्दी-जल्दी उन्हींको खाने लगी। गांधीजी स्नानघर से सबकुछ देख रहे थे। वहीं से बोले, "जड़ भरत की तरह खाती हो। सुबह से कुछ नहीं खाया और इस समय खोपरा जल्दी-जल्दी खा रही हो! इस तरह कबतक

टिकोगी ? एक साथ इतने अधिक कपड़े धोने की क्या जरूरत थी ! मेरा खयाल है कि अब तुम मेरी सेवा बहुत समय तक नहीं कर सकोगी।"

मनु भौंचक्की-सी रह गई। बड़ी मुश्किल से इतना ही कह सकी, "अब आराम लेकर स्वस्थ हो जाऊंगी।"

परन्तु गांधीजी शाम तक उससे नहीं बोले। बेचारी रो पड़ी। शाम को सदा की तरह प्रार्थना हुई। गांधीजी ने अपनी यात्रा की सब बातें सुनाईं और कहा, "लोग अपने अपरावों को स्वेच्छा से कबूल करने आते हैं, यह बहुत ही अच्छा चिह्न है। इससे और भी बहुत-से लोगों की हिम्मत बढ़ेगी। उस हिम्मत के लिए जनता के मन में उनके लिए आदर भी जरूर पैदा होगा। इससे सारे प्रान्त की प्रतिष्ठा तो बढ़ेगी ही, देश में भी उसकी छूत फैलेगी।"

प्रार्थना से लौटकर मनु ने गांधीजी को दूध दिया। वह खूब थक गई थी, इसलिए सो गई। न गांधीजी कुछ बोले, न वही बोली। लेकिन साढ़े नौ बजे गांधीजी ने उसे उठाया। उसे सोता देखकर वह बहुत खुश हुए थे। इसीलिए फिर बोलने लगे थे।

: ३७ :

उपवास एक बड़ा पवित्र कार्य है

सन् १९२५ की घटना है। एक नवयुवक चीनी विद्यार्थी भारत आया। शीघ्र ही वह गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की 'विश्व भारती'

में प्रविष्ट होकर वहां अध्ययन करने लगा। कुछ दिन तक वह बड़े सुख से रहा। परन्तु अचानक न जाने कैसे उसपर जासूस होने का सन्देह हो गया। उसके ऊपर निगरानी रखी जाने लगी। इस बात से वह इतना घबरा गया कि उसने विश्व-भारती छोड़ने का निश्चय कर लिया। लेकिन इस परदेश में वह जाय तो कहां जाय! आखिर उसने गांधीजी को विस्तार से एक पत्र लिखा। गांधीजी उन दिनों कलकत्ता में थे। उन्होंने उसे मिलने के लिए बुलाया। उसके आने पर उन्होंने बड़े प्यार के साथ उससे बातें कीं। कहा, "शान्तिनिकेतन के लोग विदेशियों का सदा स्वागत करते हैं। उन्होंने तुमपर सन्देह क्यों किया? क्या तुम भेदिये हो?"

युवक ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, "निश्चय ही कोई गलत-फहमी हो गई, मैं भेदिया नहीं हूं। केवल एक विद्यार्थी हूं। और भारत का अध्ययन करने की जिज्ञासा मेरे मन में है।"

गांधीजी ने कहा, "मैं तुम्हारे कथन को सत्य मानता हूं। क्या मैं तुम्हारी जिम्मेदारी लेकर तुम्हें शान्तिनिकेतन वापस भेज दूं?"

लेकिन उस युवक ने कहा, "कृपया मुझे अपने ही साथ रखिये। मुझे अपने आश्रम में जगह दीजिये।"

गांधीजी बोले, "परन्तु मेरा आश्रम शान्तिनिकेतन से कहीं अधिक कठिन साधना चाहता है। अपने अध्ययन के अलावा तुम्हें काफी शारीरिक श्रम भी करना होगा।"

युवक ने उत्तर दिया, "चीनी शरीर-श्रम के अभ्यस्त होते हैं।"

गांधीजी ने उसे न केवल आश्रम में रख लिया, बल्कि उसका एक भारतीय नाम भी रख दिया। वह नाम था 'शान्ति' उसने बहुत जल्दी चर्खा चलाना सीख लिया। उसको कपड़े धोने का और रसोईघर के लिए पानी लाने का काम सौंपा गया। जैसे-जैसे समय बीतता गया वह और भी अधिक परिश्रम करने लगा। ऐसा कोई काम न था, जो वह न करता था। साथ ही, वह अध्ययन भी करता था।

एक दिन उसने अपने जीवन की कहानी लिख डाली। उसे शायद कई दिन लगे थे। उसने वह कहानी गांधीजी को दी। कहा, "यह है संक्षेप में मेरे जीवन की कहानी। हिन्दुस्तान आने से पहले दूसरे सैकड़ों चीनियों के समान मैं भी सिंगापुर में घृणित जीवन बिताया करता था। यहां रहकर मुझे आन्तरिक प्रेरणा हुई कि मैं अपनी सारी बातें आपके सामने खोलकर रखूं। इसे पढ़ लीजिये और मुझे आत्म-शुद्धि के लिए दस दिन का उपवास करने की आज्ञा दीजिये।"

गांधीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन वह समझ गये कि यह युवक एक आध्यात्मिक कशमकश के बीच से गुजर रहा है। उन्होंने कहा, "मैं समय निकालकर तुम्हारी रचना अवश्य पढ़ूंगा। लेकिन जबतक पढ़ न लूं, उपवास आरम्भ मत करो। उपवास एक बड़ा पवित्र कार्य है। उसे करनेवाले को उसके योग्य होना बहुत आवश्यक है।"

गांधीजी ने उस पत्र को पढ़ा। वह उस युवक की स्पष्टता और निष्कपट आत्मस्वीकृति से बहुत प्रभावित हुए। उसे बुलाया और उपवास करने की आज्ञा दे दी। दस दिन तक वह युवक

केवल जल पर ही रहा। गांधीजी प्रतिदिन उसके पास जाते और पन्द्रह-बीस मिनट तक उससे बातें करते रहते।

दस दिन पूरे हुए। युवक ने उपवास समाप्त करके कुछ प्रण किये। वे प्रतिज्ञाएं दो कागजों पर लिखी गईं दोनों पर शान्ति ने हस्ताक्षर किये और गांधीजी ने साक्षी की। एक प्रति गांधीजी के पास रही और दूसरी शान्ति के पास। अब जैसे शान्ति के कंधों से सारा बोझ उतर गया था। कुछ दिन बाद वह चीन लौट गया और वहां एक समाचार-पत्र का सम्पादक हो गया। लेकिन नाम उसका अब भी शान्ति ही था।

: ३८ :

जहां हरिजनों को मनाही है वहां हम कैसे जा सकते हैं ?

हरिजन-प्रवास के समय गांधीजी उड़ीसा भी गये थे। वहीं पर सप्तपुरियों में प्रसिद्ध जगन्नाथपुरी है। भारतभर के यात्री यहां आते हैं। महात्माजी के साथ कस्तूरबा, महादेवभाई और दूसरे बहुत-से लोग थे। सायंकालीन प्रार्थना के बाद जब महात्माजी आराम करने चले गये, तब कस्तूरबा ने महादेवभाई से कहा, "मैं जगन्नाथजी के दर्शन करना चाहती हूं। तुम चलोगे मेरे साथ?"

महादेव तुरन्त तैयार हो गये। वे दोनों मंदिर गये। और भी लोग साथ में थे। कुछ लोगों ने बाहर से दर्शन किये, लेकिन ये दोनों अंदर चले गये। जब सब लोग लौटे, तो महात्माजी को

पता लगा। वह एकाएक बेचैन हो उठे। उनका दिल धड़कने लगा। उन्होंने दर्द-भरे स्वर में उनसे कहा, "तुम लोग मन्दिर कैसे गये? जहां हरिजनों को मनाही है वहां हम कैसे जा सकते हैं? मैं भी तो अपनेको हरिजन मानता हूं। मैं औरों को माफ कर देता, लेकिन तुम दोनों तो मुझसे एकरूप हो गये हो। जहां हरिजन नहीं जा सकते वहीं तुम हो आये, मैं यह कैसे सहन करूं? अपनी वेदना किससे कहूं? तुम गये तो मानो मैं ही गया। मेरे साथ के लोगों को देखकर ही लोग मेरी परीक्षा करते हैं।"

आगे उनसे बोला नहीं गया। दिल की धड़कन तेज हो उठी। जो आसपास थे, वे सब घबरा गये। तुरन्त डाक्टर को बुलाया गया। कस्तूरबा प्रभु से प्रार्थना करने लगीं। महादेवभाई कुछ कह ही नहीं पा रहे थे। बहुत देर बाद कहीं जाकर महात्माजी का मन शान्त हुआ। दिल की धड़कन भी कम हो गई। महादेव-भाई ने लिखा है, "सन्तों की सेवा करना और उनके साथ रहना बहुत कठिन है। कब क्या हो जाय, कुछ पता नहीं।"

: ३९ :

मुझे तुम-जैसा अल्पजीवी थोड़े ही बनना है

एक बार सुपरिचित जैन विद्वान पंडित सुखलालजी को आश्रम में भोजन के लिए आमन्त्रित किया गया। प्रार्थना के बाद स्वयं गांधीजी ने सबको भोजन परोसा। गेहूं की रोटियां और

साग परोसकर वह बोले, "मीठा कुछ भी नहीं है। क्या यह सब भायेगा? यहां तो सदा ही फीकापन रहता है। आपने कभी फीका खाना खाया है?"

सुखलालजी बोले, "जी, जैनियों का आयंबिार भोजन फीका ही होता है।"

गांधीजी ने हँसकर कहा, "तब तो तुम्हें यह आश्रम सुहा जायगा।"

उस दिन एकादशी थी। गांधीजी नारियल का दूध और खजूर आदि लेकर ही बैठे थे कि एक सज्जन उनसे मिलने के लिए आ पहुंचे। गांधीजी ने उनसे कहा, "जरा बैठिए, मैं भोजन करके अभी आता हूं।"

लेकिन गांधीजी का भोजन क्या, पांच-दस मिनट में समाप्त होनेवाला था। वह सज्जन बैठे-बैठे ऊब गये और बड़ी नम्रता से बोले, "आपको तो बहुत समय लग गया।"

गांधीजी हँस पड़े। कहा, "अभी एक घंटा कहां हुआ है?"

वह सज्जन बोले, "ऐसे फलाहार और खजूर-भर खाने में एक घंटा लगाना तो आश्चर्य की बात है!"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इसमें आश्चर्य कैसा! मुझे कोई तुम जैसा अल्पजीवी थोड़े ही बनना है।"

वह सज्जन बोले, "तो क्या आप इतने धीरे खाने से दीर्घ-जीवी बन जायंगे?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जरूर, मुझे तो पूरे सौ वर्ष जीना है और उसका उपाय यही है।"

हे ईश्वर, इस धर्मसंकट में मेरी लाज रखना

पहले सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, तो उन्होंने बम्बई में बस जाने का निश्चय किया। लेकिन घर लिये अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि उनका दूसरा लड़का मणिलाल सख्त बीमार हो गया। उसे काल ज्वर ने घेर लिया। बुखार उतरता ही नहीं था। घबराहट तो थी ही, पर रात को सन्निपात के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

गांधीजी ने डाक्टर से सलाह ली। उसने देखभाल करके कहा, "दवा से कोई लाभ होनेवाला नहीं है। अब तो इसे अण्डे और मुर्गी का शोरबा देने की जरूरत है।"

गांधीजी बोले, "डा० साहब, हम लोग शाकाहारी हैं। मेरी इच्छा लड़के को इनमें से एक भी चीज देने की नहीं है। क्या आप कोई और उपाय नहीं बता सकते?"

डाक्टर ने कहा, "आपके लड़के के प्राण संकट में हैं। दूध और पानी मिलाकर दिया जा सकता है। पर उससे पूरा पोषण नहीं मिल सकता। दवा के नाम पर तो आप ये चीजें दे ही सकते हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आप जो कहते हैं, वह तो ठीक है। आपको ऐसा ही कहना चाहिए, पर मेरी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। यदि लड़का बडा होता, तो उसकी इच्छा जानने का

प्रयत्न करता और जो वह चाहता उसे वही करने देता, पर अब तो इसके लिए मुझे ही विचार करना है। मनुष्य के धर्म की कसौटी ऐसे ही अवसरों पर होती है। चाहे ठीक हो, चाहे गलत, मैंने तो इसको धर्म माना है कि मनुष्य को मांस आदि न खाना चाहिए। हर बात की एक सीमा होती है। जीने के लिए भी कुछ वस्तुओं को हमें नहीं ग्रहण करना चाहिए। मेरे धर्म की मर्यादा ऐसे समय मांस आदि का उपयोग करने से रोकती है।"

और उन्होंने पानी का उपचार करने का अपना निश्चय डाक्टर को बताया। डाक्टर समझदार था। उसने गांधीजी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न किया और वह उनकी प्रार्थना पर बीच-बीच में आकर मणिलाल की जांच करने के लिए तैयार हो गया।

उपचार चलने लगा। तीन दिन बीत गये, पर कोई लाभ होता दिखाई नहीं दिया। रात को वह बड़बड़ाता था। बुखार भी १०४ डिग्री तक पहुंच जाता था। यह देखकर गांधीजी घबराए। सोचने लगे, यदि वह बालक को खो बैठे तो दुनिया क्या कहेगी! बड़े भाई क्या कहेंगे! क्यों न दूसरे डाक्टरों को बुला लिया जाय। किसी वैद्य को भी तो बुलाया जा सकता है। मां-बाप को अपनी अधूरी अक्ल आजमाने का क्या हक है!

एक ओर यह चेतावनी थी, तो दूसरी ओर ईश्वर में श्रद्धा रखकर अपना काम करने का संकल्प भी था। दिन-भर मन में इसी तरह उथल-पुथल मचती रही। रात हुई। वह मणिलाल को अपने पास लेकर सोए हुए थे। सहसा उन्होंने निश्चय किया कि उसे भीगी चादर की पट्टी में रखा जाय। बस, वह उठे। कपड़ा लिया,

ठण्डे पानी में डुबोया और निचोड़कर उसमें सिर से पैर तक उसे लपेट दिया। ऊपर से दो कम्बल उढ़ा दिये। सिर पर भीगा हुआ तौलिया भी रख दिया। शरीर तवे की तरह तप रहा था और बिलकुल सूखा था। पसीना तो आता ही नहीं था!

गांधीजी बहुत थक गये थे। वह मणिलाल को उसकी मां को सौंपकर आध घण्टे के लिए खुली हवा में ताजगी और शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से चौपाटी की तरफ चले गये। रात के दस बजे होंगे। मनुष्यों का आवागमन कम हो गया था, पर उन्हें तो इस बात का ध्यान ही नहीं था। वह तो विचार-सागर में गोते लगा रहे थे, "हे ईश्वर, तू इस धर्म-संकट में मेरी लाज रखना।" मुंह से 'राम-राम' का रटन भी चल रहा था।

कुछ देर बाद वह वापस लौटे। कलेजा धड़क रहा था। घर में घुसते ही मणिलाल की आवाज कानों में पड़ी, "बापूजी आ गये?"

"हां, भाई।"

"मुझे इसमें से निकालिये न, मैं जला जा रहा हूं।"

"क्यों, क्या पसीना छूट रहा है?"

"मैं तो भीग गया हूं। अब मुझे निकालिये न, बापूजी।"

गांधीजी ने देखा, सचमुच पसीना आ रहा है। बोले, "मणिलाल, घबड़ा मत, अब तेरा बुखार चला जायगा। थोड़ा पसीना और आने दे।"

कुछ देर वह और इसी तरह उसे बहलाते रहे। जब माथे से पसीना बह चला तब चादर खोली और शरीर पोंछा। उसके बाद बाप-बेटे दोनों साथ-साथ सो गये। खूब सोये। सुबह देखा, तो मणिलाल का बुखार बहुत कम हो गया था।

अपनी जीवन-श्रद्धा पर अमल करते हुए यदि. . .

हरिजन-यात्रा के समय गांधीजी पूना भी गये थे। उस समय वहां की म्युनिसिपल कमेटी ने तत्कालीन शासकों के विरोध के बावजूद उन्हें अभिनन्दन-पत्र समर्पित करने का निश्चय किया।

उस दिन नगरपालिका का हाल दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। यहांतक कि सड़क पर भी भीड़ जमा हो गई थी। बालचर बैण्ड सहित सभी लोग बड़ी उत्सुकता से उनके आने की राह देख रहे थे। सूचना आ चुकी थी कि गांधीजी अपने दल-सहित दो कारों में बैठकर आ रहे हैं।

सहसा शोर उठा, "महात्माजी आ गये। महात्माजी आ गये।"

दूसरे ही क्षण बड़े जोर का धमाका हुआ। लोगों ने कानों में उंगलियां दे लीं और चिल्ला उठे, "यह तो कहीं बम फटा है। क्या किसीने गांधीजी पर बम फेंका है?"

उस समय ऐसे बहुत लोग थे, जो गांधीजी के इस क्रांतिकारी सुधार को ज़रा भी पसन्द नहीं करते थे। जहां भी गांधीजी जाते, वहींपर वे भी साथ-साथ जाते और उनके विरुद्ध प्रचार करते। उन्हींमें से किसी एक व्यक्ति ने गांधीजी के दल पर बम फेंका। उस व्यक्ति का कभी पता नहीं लग सका, लेकिन भाग्य

की बात, वह बम जिस गाड़ी पर पड़ा, उसमें गांधीजी नहीं थे। वह बम दूसरी गाड़ी पर पड़ा, जिसमें अन्नासाहब भोपटकर आदि थे। उन्हें गहरी चोटें आईं।

जैसाकि गांधीजी का स्वभाव था, उन्होंने उस बेचारे बम फेंकनेवाले पर रहम खाते हुए कहा, "मैं नहीं समझता कि कोई भी समझदार सनातनी ऐसी मूर्खतापूर्ण करतूतों को प्रोत्साहन देगा। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मेरे सनातनी मित्र उनकी तरफ से बोलनेवाले और लिखनेवाले लोगों की भाषा पर नियन्त्रण रखें। इसमें कोई शक नहीं कि इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में मदद ही मिली है। यह स्पष्ट है कि जब किसी अच्छे काम के लिए आत्म-बलिदान किया जाता है, तो वह कार्य तेजी से आगे बढ़ता है। मैं स्वयं शहीद बनने को बहुत उत्सुक नहीं हूं, परन्तु अपनी जीवन-श्रद्धा पर अमल करते हुए यदि मुझे शहीद बनना पड़े, तो उससे मुझे तनिक भी दुःख नहीं होगा। मगर उन्हें अपवित्र लगनेवाले मेरे शरीर का नाश करने में अन्य निरपराध व्यक्तियों के प्राण संकट में नहीं डालने चाहिए। अगर वह बम मुझपर गिरा होता, तो दुनिया क्या कहती ? दक्षिण अफ्रीका में जिन हत्यारों ने मुझपर कातिलाना हमला किया था। मैंने उन्हें छोड़ देने के लिए कहा था। उसी प्रकार यदि आज बम फेंकने वाला व्यक्ति मिल जाता, तो मैं कहता कि उसे भी छोड़ दिया-जाय।"

अपने विरोधी को आप पूरा अवसर दें

सन् १९३८ में तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस ने पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की थी। श्री जे० सी० कुमारप्पा को भी, जो गांधीवादी अर्थशास्त्र के एक आचार्य माने जाते थे, उस कमेटी का सदस्य बनने के लिए आमन्त्रित किया गया था। परन्तु श्री कुमारप्पा इस कमेटी से प्रसन्न नहीं थे। उनकी दृष्टि में यह हर श्रेणी के किन्तु बेमेल व्यक्तियों का एक गुट मात्र थी। इसलिए उसमें भाग लेने से उन्होंने इंकार कर दिया।

तब पं० जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी से अनुरोध किया कि वह श्री कुमारप्पा को बम्बई आने के लिए कहें।

गांधीजी ने श्री कुमारप्पा को बुलाया, उनसे बातें कीं, फिर बोले, "आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि आप पूरी-की-पूरी कमेटी को अपनी नीति का कायल नहीं बना सकेंगे? इससे तो आपमें आत्मविश्वास की कमी प्रकट होती है। आपको अपने साथियों पर इतना विश्वास भी नहीं है कि वे मुक्त मन से आपकी बात सुन लें!"

श्री कुमारप्पा ने उत्तर दिया, "आपका कहना ठीक हो सकता है, किन्तु कबूतर की भांति भोले होने पर भी हमें सांप की तरह चालाक बनना ही होगा। दीवार से सर टकराने से क्या लाभ! सदस्यों की नामावली देखते ही मैं समझ गया था कि

वहां बेकार की मगजपच्ची के सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।"

गांधीजी बोले, "एक सत्याग्रही के लिए ऐसा दृष्टिकोण शोभा नहीं देता। अपने विरोधी को आप पूरा अवसर दें और जब ऐसा अनुभव हो कि वहां रहना व्यर्थ ही है, तो त्यागपत्र देकर चले आयें। अपने साथियों को समझाने में जो समय लगेगा, वह व्यर्थ नहीं जायगा। उससे आपका दृष्टिकोण विकसित भी होगा और विशाल भी।"

श्री कुमारप्पा के पास अब कोई उत्तर नहीं था। उन्हें बम्बई जाना पड़ा। तीन महीने तक कमेटी के कार्य में भाग भी लिया। उसके बाद जब उन्होंने यह अनुभव किया कि उनका वहां रहना व्यर्थ है तब उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

: ४३ :

मैं उचित शब्द खोजने में मग्न था

पंजाब में जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की जांच करने के लिए कांग्रेस ने जो समिति बनाई थी, गांधीजी भी उसके एक सदस्य थे। उसकी रिपोर्ट तैयार करने का भार भी उन्हींपर था। घर-घर घूमकर उन्होंने गवाहियां लीं। आखिर जांच समाप्त हुई। वह रिपोर्ट तैयार करने में व्यस्त हो गये।

उस समय वह श्रीमती सरलादेवी चौधरानी के मकान पर ठहरे हुए थे। एक दिन श्री गुरुदयाल मल्लिक उनसे मिलने के

लिए वहां आये। देखा कि दरवाजा भीतर से बन्द है। उन्होंने उसे खटखटाया नहीं। बाहर बैठकर उसके खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। एक घण्टा बीता, दूसरा घण्टा बीता, तीसरा भी बीत गया, तब कहीं जाकर वह द्वार खुला। वह अन्दर गये। बड़े प्यार से गांधीजी ने पूछा, "क्या बड़ी देर से इंतजार कर रहे थे?"

मल्लिक साहब उन दिनों युवक थे। किंचित रूखे स्वर में उत्तर दिया, "कुछ-कुछ!"

गांधीजी बोले, "मुझे इस बात का खेद है, किन्तु भाई, मार्शल लॉ के समय एक खास स्थान पर एक दल विशेष द्वारा जोश-खरोश में आकर जो काण्ड किया गया था, उसके विवरण के सम्बन्ध में एक वाक्य की पूर्ति करने के लिए मैं उचित शब्द खोजने में मग्न था।"

: ४४ :

आप ही इसे संक्षिप्त कर लाइये

सन् १९४५ में गांधीजी ने, जब वह बम्बई में थे, किसी संबंध में वक्तव्य तैयार किया। उनके सहयोगियों ने जब उसे देखा तो लगा कि वह आवश्यकता से अधिक लम्बा है। उनमें से एक व्यक्ति ने तो यहांतक कह दिया, "आपने जो इतना सारा लिखा है, वह केवल चार पंक्तियों में आ सकता था।"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "क्या ऐसी बात है? तो कृपाकर आप ही इसे संक्षिप्त कर लाइये। मैं आंख मींचकर

उसपर हस्ताक्षर कर दूंगा।"

यह सुनकर वह आलोचक महोदय मानो स्तब्ध रह गये। कुछ उत्तर न दे सके। तब किसी ज्ञानी पुरुष के वचन की याद दिलाते हुए गांधीजी सहज भाव से बोले, "दूसरे के काम की आलोचना करनेवाले व्यक्ति को आलोच्य विषय की, विधायक रूप से, स्थान-पूर्ति करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।"

: ४५ :

आपकी चिन्ता को मैंने चौबीस घण्टे के लिए बढ़ा दिया

सन् १९२१ में राष्ट्रीय महासभा का छत्तीसवां अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ था। स्वागत-समिति के प्रधानमन्त्री थे श्री गणेश वासुदेव मावलंकर। वह प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मेम्बर भी थे। स्वागत-समिति ने यह निश्चय किया कि जो निवास-स्थान बनाये जायं, उनके लिए विशुद्ध खादी का ही प्रयोग किया जाय। इसके लिए बहुत खादी खरीदनी पड़ी। मावलंकरजी को प्रतिदिन १० से लेकर १५,००० रु० तक की हुण्डियां छुड़वानी पड़ती थीं।

बम्बई कमेटी ने डेढ़ लाख रुपया देने का आश्वासन दिया था, परन्तु कई महीने बीत गये, रुपया नहीं आया। रुपया नहीं आयगा तो हुण्डियां कैसे छुड़ाई जायंगी?

तभी गांधीजी बम्बई जानेवाले थे। उन्हें सारी स्थिति

समझाते हुए श्री मावलंकर ने उनसे प्रार्थना की कि वह बम्बई पहुंचकर उन्हें तुरन्त इस आशय का तार देने की व्यवस्था करें कि रुपया उसी दिन रवाना कर दिया जायगा। इससे चिन्ता कुछ तो कम होगी।

उन दिनों तार भेजने में केवल ६ आने लगते थे। लेकिन दूसरे दिन तार नहीं मिला। स्वाभाविक था कि श्री मावलंकर झुंझला जाते। फिर भी उन्होंने सोचा कि किसी आवश्यक कार्य में फंस जाने के कारण गांधीजी ऐसा नहीं कर पाये।

उससे अगले दिन उनका एक पत्र मिला। पत्र क्या, तार का फार्म ही था। उसपर गांधीजी ने स्वयं अपने हाथ से मजमून लिखा था। उसीकी पीठ पर उन्होंने यह पत्र लिखा, "प्रिय मावलंकर, आपकी चिन्ता को मैंने चौबीस घण्टे के लिए बढ़ा दिया है, इसका मुझे खयाल है। किन्तु आज छुट्टी का दिन होने के कारण कुछ अधिक पैसे लग जाते। चूंकि आपको निश्चित रूप से रुपये भेजे जानेवाले थे, इसलिए मैंने यह जानते हुए भी कि आप कुछ घण्टों तक चिंतित रहेंगे, तार के व्यय को बचाना उचित समझा।"

: ४६ :

व्यायाम से कभी मुंह न मोड़ना

सन् १९३७ में गांधीजी कलकत्ता में सुभाषचन्द्र बोस के बड़े भाई शरतचन्द्र बोस के घर ठहरे हुए थे। उन दिनों महादेव

भाई कुछ बहुत व्यस्त रहते थे। घूमने भी नहीं जा पाते थे। यह देखकर गांधीजी ने श्री गगनबिहारी मेहता से, जो उन दिनों वहीं रहते थे, कहा, "आप महादेव को अपने साथ घूमने ले जाया करें।"

श्री मेहता उस दिन से बराबर महादेवभाई को अपने साथ घुमाने के लिए ले जाते थे, लेकिन एक दिन काम बहुत था। महादेवभाई थक भी बहुत गये थे। इसलिए उन्होंने घूमने जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब गांधीजी ने उन्हें झिड़क दिया। बोले, "महादेव, किसी दिन तुम बिना भोजन के रह जाओ तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु व्यायाम से कभी तुम मुंह न मोड़ना। जाओ भाई, घूमने के लिए जाओ।"

: ४७ :

सादगी ऐसी सहज-साध्य नहीं है

सत्याग्रह के प्रथम चरण में ही श्री प्यारेलाल नैयर, जो बाद में गांधीजी के निजी सचिव हुए पढ़ाई छोड़कर आश्रम में भर्ती हो गये थे। गांधीजी ने उनसे कहा, "आप मुझे दो निबन्ध लिख-कर दीजिये। एक अंग्रेजी में 'असहयोग' पर, दूसरा हिन्दुस्तानी में। उसका विषय आप स्वयं चुन सकते हैं। जैसे 'मैं गांधी के पास क्यों आया?' ये दोनों निबन्ध तीन बजे तक मुझे मिल जाने चाहिए।"

श्री प्यारेलाल तुरन्त निबन्ध लिखने बैठ गये। उन्होंने एक

बजे तक दोनों निबन्ध पूरे करके गांधीजी को दे दिये और गांधीजी दूसरे दिन ही अपनें तूफानी दौरे पर निकल पड़े। श्री प्यारेलालजी निबन्ध की बात भूलकर आश्रम के कामों में लग गये।

एक दिन उन्हें गांधीजी का पत्र मिला। लिखा था, "निबन्ध पढ़ लिये हैं, पसन्द भी हैं। मैं आपकी लेखन-शक्ति का उपयोग करना चाहता हूं।"

दो दिन बाद तार आया, "तुरन्त रवाना होकर डा० अंसारी के निवास-स्थान नं० १ दरयागंज में आकर मुझसे मिलो।"

श्री प्यारेलाल दो दिन बाद उनके सामने जाकर उपस्थित हो गये। नहा-धोकर जब वह आराम कर चुके तब गांधीजी ने उनको अपने पास बुलाया। उनका निबन्ध सामने रखा हुआ था, वह उसे 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित कराना चाहते थे। उन्होंने कुछ बातें पूछीं, फिर उस लेख को अपनी इस टिप्पणी के साथ छपने के लिए भेज दिया :

"हाल ही में असहयोग करनेवाले एक पंजाबी विद्यार्थी की सुयोग्य रचना।"

दूसरे दिन अपने दल के साथ वह रोहतक के लिए रवाना हो गये। श्री प्यारेलाल वहीं रह गये। शाम को जब गांधीजी लौटे तो उन्होंने इस बात के लिए उन्हें झिड़का। श्री प्यारेलाल ने कहा, "मुझसे किसीने साथ चलने के लिए नहीं कहा था।"

गांधीजी बोले, "किसी व्यक्ति की असावधानी के कारण ऐसा हुआ है, फिर भी अपनी सतर्कता से उस व्यक्ति को इस

प्रमाद का भागी होने से बचा लेना तुम्हारा फर्ज था। जब संकोच और विनय कर्त्तव्य-पथ को अवरुद्ध करते हों, तो उन्हें मिथ्या अहंता के लक्षण मानकर उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिए।"

उसी दिन शाम को महादेवभाई 'यंग इण्डिया' के काम से अहमदाबाद चले गये और गांधीजी की निगरानी में श्री प्यारेलाल की शिक्षा-दीक्षा का कार्य आरम्भ हुआ। किसीको पानी का गिलास देने से पहले बाहर लगा हुआ पानी पोंछ दिया जाय, खाना परोसने के लिए हाथ धोने के बाद दरवाजा आदि खोलने का काम उन्हीं हाथों से न किया जाय, प्याले में दूध देने से पहले चम्मच से उसे अच्छी तरह हिला लिया जाय, जिससे उसके नीचे यदि कोई अखाद्य पदार्थ हो तो ऊपर आ जाय, पाण्डुलिपि को सुपाठ्य बनाने के लिए उसमें विराम चिन्ह और अनुस्वार आदि स्पष्ट लिखे जायं, बिछौना कैसे बिछाया जाय, मलमूत्र के काम आनेवाले बर्तन कैसे साफ किये जायं, आदि कुछ ऐसी छोटी-मोटी बातें थीं, जो उन्हें थोड़े ही दिनों के भीतर सीखनी पड़ीं। सूक्ष्म अध्ययन और निरीक्षण के बाद गांधीजी की सादगी कैसी दुसाध्य कला है, इसका उन्हें पता लग गया। एक बार किसी अवसर पर गांधीजी ने स्वयं कहा था, "सादगी ऐसी सहज-साध्य नहीं है, जैसाकि अधिकांश लोग सोचा करते हैं।"

आप इतने उछल क्यों रहे थे ?

सन् १९२५ में पटना में कांग्रेस दो दलों में बंट गई थी। एक था स्वराज्य-दल, जो कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करता था। दूसरा था विधायक दल। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में इस बात का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा, "अब डा० पट्टाभि अपनी तीखी कलम पर अंकुश लगा देंगे।"

डा० पट्टाभि सीतारामय्या इस वाक्य का अर्थ समझ गये। उसी बैठक में एक अन्य अवसर पर उन्होंने स्वराज्य दल के विरुद्ध विश्वास भंग करने का अभियोग लगाया, तो पं० मोतीलाल नेहरू और श्री सत्यमूर्ति क्रुद्ध हो उठे। मोतीलाल नेहरू गरजते हुए बोले, "मुझे कांग्रेस की जरा भी परवा नहीं है। मैं उससे अलग हो जाऊंगा।"

उस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष थे गांधीजी। उन्होंने डा० पट्टाभि सीतारामय्या से कहा, "मैं आपकी वक्तृता का प्रदर्शन नहीं चाहता। आप अब मत बोलिए।"

डा० पट्टाभि चुपचाप अपने स्थान पर आ बैठे और गांधीजी लगभग बीस मिनट तक मोतीलालजी को उपदेश देते रहे। बोले, "विद्वत्ता में भले ही आप श्रेष्ठ होंगे, किन्तु यदि आप विनय से काम लेने में चूके, तो अपनी अहंता के कारण अवश्य ही किसी दिन जाल में फंस जायेंगे।"

उन्होंने मोतीलालजी से आग्रह किया कि वह डा० पट्टाभि

से और साथ ही कांग्रेस से क्षमा-याचना करें।

पं० मोतीलाल नेहरू ने, जो अबतक शांत हो गये थे, ऐसा ही किया। प्रत्युत्तर में डा० पट्टाभि भी कुछ बोले और वह मामला वहीं समाप्त हो गया। दूसरे दिन सवेरे जब डा० पट्टाभि सीतारामय्या गांधीजी से मिलने के लिए गये, तो उन्होंने पूछा, "मोतीलालजी की क्षमा-प्रार्थना स्वीकार करते आप इतना उछल क्यों रहे थे ?"

बेचारे पट्टाभि ! इस प्रश्न का क्या उत्तर देते !

: ४६ :

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य मेरे बचपन का रसप्रद विषय है

सितम्बर, १९४७ में कलकत्ता में जब साम्प्रदायिक उत्पात चरम सीमा पर पहुंच गया तब गांधीजी ने उसे रोकने के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। सभी लोग बहुत चिंतित हो उठे। एक-एक करके तीन दिन बीत गये। उत्पात को रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किये गए। हिन्दुओं, मुसलमानों सभीने उनसे उपवास छोड़ देने की प्रार्थना की। वचन दिया कि वे सब आपस में मिलकर रहने का प्रयत्न करेंगे, लेकिन गांधीजी टस-से-मस नहीं हुए। चौथे दिन पैंतीस गुण्डों की एक टोली आई। डाक्टर ने उनसे मिलने के लिए मना किया। गांधीजी बोले, "काम की खातिर तो मैं मरते दम तक बातें करता रहूंगा।"

उन लोगों ने अपना अपराध स्वीकार किया, क्षमा मांगी और उपवास छोड़ने की विनती की।

गांधीजी बोले, "इस तरह उपवास नहीं छोड़ा जायगा। तुम सब मुसलमानों में घूमो। वे लोग संख्या में कम हैं। तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिए। जब मेरी आत्मा मुझसे कहेगी कि तुम उनकी रक्षा करते हो और स्थायी शान्ति कायम हो गई है तो मैं उपवास छोड़ दूंगा।"

दो घण्टे बाद गुण्डों की टोली का सरदार आया। उसने भी अपना अपराध स्वीकार किया। कहा, "मुझे सजा दीजिये। मैं और मेरी सारी टोली आपकी सजा भुगतने के लिए तैयार है। लेकिन आप उपवास छोड़ दीजिये।"

गांधीजी बोले, "मेरी सजा यह है कि तुम मुसलमानों में जाओ और काम करने लगो। मुझे यकीन हो जायगा कि अब तुममें सचमुच परिवर्तन हो गया है, तो मैं तुरन्त उपवास छोड़ दूंगा। लेकिन यह काम तेजी से होना चाहिए, क्योंकि मुझे तुरन्त ही पंजाब जाना है। पंजाब जाने के लिए ही मुझे जीने की इतनी प्रबल इच्छा है। अगर तुम देर करोगे, तो मैं अधिक दिन नहीं टिक सकूंगा।"

संध्या को राजाजी का खत आया, "शहर में शान्ति है और वातावरण शान्त और प्रसन्न है।" थोड़ी देर बाद विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों के साथ नेता लोग आये। उन्होंने भी उपवास छोड़ने की प्रार्थना की। लगभग २५ मिनट तक गांधीजी उनको समझाते रहे। फिर कहा, "मैं आपसे दो सवाल पूछता हूं—(१) क्या आप कह सकते हैं कि अब कभी कलकत्ते में अशान्ति नहीं

होगी ? (२) अगर होगी तो आप सब मुझे उसकी रिपोर्ट देने के लिए नहीं आयेंगे, बल्कि मैं सबकी मृत्यु के समाचार सुनूंगा, नहीं तो जैसा मैंने बिहार में कहा है, उसी तरह आमरण उपवास करूंगा। मैं किसी धोखे में पड़ना नहीं चाहता। अगर आप सही नीयत से मेरी मदद नहीं करेंगे, तो मेरा खून करेंगे।"

शहीदसाहब ने तर्क किया, "समझ लीजिये, हम मर जायं तो फिर आपको आमरण उपवास करने की जरूरत क्यों होगी? आपकी यह प्रतिज्ञा ठीक नहीं है।"

गांधीजी बोले, "सफेद गुण्डे ही सबकुछ करते हैं। बाकी इतने बड़े शहर में चोर-डाकू तो बहुत-से होंगे। अभी तक ईश्वर ने मुझे ऐसी ताकत नहीं दी कि मैं उनपर विजय पा सकूं, लेकिन हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य मेरे बचपन का रसप्रद विषय है। इसलिए कहने का मतलब यह है कि भले ही सारी दुनिया में आग भड़क उठे, लेकिन कलकत्ते में कभी हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा नहीं होना चाहिए। इस बात की अगर आप सब जिम्मेदारी लें और मुझे ऐसा लिख दें, तो मैं उपवास छोड़ दूंगा।"

गांधीजी बहुत थक गये थे। सिर में चक्कर आ रहे थे। कभी सोते, कभी माला फिराते थे और राम-राम भजने लगते थे। सब लोग दूसरे कमरे में चले गये। एक घण्टे तक उनमें चर्चा होती रही। अन्त में उन लोगों ने लिख दिया, "अब कलकत्ते में सम्पूर्ण शान्ति बनी रहेगी और अगर कुछ भी होगा तो उसकी जिम्मेदारी हमारे सिर पर होगी। हम पहले मरेंगे।"

उसपर सभी नेताओं ने हस्ताक्षर किये। तब गांधीजी ने प्रार्थना करने के लिए कहा और रात को ठीक सवा नौ बजे सुहरा-

वर्दीसाहब के हाथ से मौसम्बी के रस का प्याला लेकर अपना उपवास तोड़ा, लेकिन रस पीने से पहले एक बार उन्होंने फिर अपने मन का दर्द उनके सामने रखा, "कलकत्ता ही सारे हिन्दुस्तान की चाबी है। सारी दुनिया जल जाय, तो भी कलकत्ता को नहीं जलना चाहिए। ईश्वर सबको सन्मति दे। बाकी आपके और मेरे बीच में भगवान तो पड़ा ही है।"

इतना कहकर उन्होंने रस पीना शुरू किया।

: ५० :

आपका पांव अब कैसा है ?

दिल्ली में हरिजन उद्योग शाला स्थापित करने की योजना बन रही थी उन्हीं दिनों गांधीजी दिल्ली आये। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मन्त्री मार्तण्ड उपाध्याय दिल्ली में ही रहते थे। उनके पिता पण्डित सिद्धनाथ उन्हींके पास थे। हरिभाऊ उपाध्याय के कारण वह गांधीजी से खूब परिचित थे। एक दिन उन्होंने मार्तण्डजी से कहा, "गांधीजी आये हैं, मुझे उनसे मिला दो।"

यह सुनकर मार्तण्डजी कुछ घबरा गये, क्योंकि वह जानते थे कि पिताजी हरिजनों के प्रश्न को लेकर गांधीजी से सहमत नहीं थे। वह मानते थे कि इन ढेढ़-भंगियों को सिर पर बैठाकर गांधीजी धर्म का सत्यानाश कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। दफ्तर चले गये। लेकिन जैसे ही संध्या को लौटे

तो पाया, पिताजी स्वयं ही तांगे में बैठकर गांधीजी से मिलने चले गये हैं। भागे-भागे वह भी गांधीजी के निवास-स्थान पर पहुंचे। पंडितजी उस समय जीने के पास खड़े हुए थे और गांधीजी ऊपर की मंजिल में चरखा कात रहे थे। स्वयंसेवक के द्वारा पंडितजी ने संदेशा भेज दिया था, लेकिन गांधीजी तो उनको पंडित सिद्धनाथ के नाम से नहीं पहचानते थे। कहला दिया कि प्रार्थना में जायंगे तब मिल लेंगे। इसलिए बेचारे नीचे ही खड़े थे। मार्तण्डजी सीधे ऊपर पहुंच गये। प्रणाम किया। गांधीजी पहचानकर बोले, "क्यों, क्या करते हो ? कैसा चलता है ? हरिभाऊ कैसा है ? पिताजी कहां हैं ?"

मार्तण्डजी ने कहा, "पिताजी आपसे मिलने आये हैं और नीचे खड़े हैं।"

गांधीजी बोले, "अरे, नीचे क्यों खड़े हैं, बुला लाओ उन्हें!"

मार्तण्डजी नीचे आकर पिताजी को ऊपर ले चले। मन-ही-मन डर रहे थे कि अब पिताजी के क्रोध का विस्फोट होगा। वह गांधीजी के कटु आलोचक हैं, फिर आज तो उन्हें आधा घण्टा खड़ा रहना भी पड़ा है। ऊपर पहुंचकर पिताजी ने कहा, "जै रामजी की, गांधीजी।"

गांधीजी बोले, "क्यों पंडितजी, कैसा स्वास्थ्य है ? आपका पांव अब कैसा है ? ऊपर जीना चढ़ने में तकलीफ तो नहीं हुई ?"

पंडितजी ने उत्तर दिया, "नहीं, महात्माजी, आपकी कृपा से सब अच्छा है। पैर भी अब अच्छा है, लेकिन पैर की आपने बड़ी याद रखी। मैं तो दस-ग्यारह वर्ष बाद मिला हूं आपसे।"

गांधीजी बोले, "हां, साबरमती में जब आपको देखा था, तो

आपके बायें पैर में कुछ दर्द है, ऐसा लगा था। आप ज़रा-ज़रा लंगड़ा रहे थे।"

: ५१ :

सत्य के साधक को ऐसे प्रमाद से बचना चाहिए

एक दिन गांधीजी सूत कातने के बाद उसे लपेटे पर लपेटने जा रहे थे कि अचानक किसी आवश्यक काम से उन्हें बाहर जाना पड़ा। जाते समय उन्होंने अपने स्टेनो-टाइपिस्ट श्री सुबैया से कहा, "सूत लपेटे पर उतार लेना, तार गिन लेना और प्रार्थना के समय से पहले मुझे बता देना।"

सुबैया ने उत्तर दिया, "जीहां, मैं कर लूंगा।"

गांधीजी चले गये। सांध्य-प्रार्थना के समय आश्रमवासियों की हाजिरी ली जाती थी। प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति अपना नाम बोले जाने पर ॐ कहता था। उसी समय उसने कितने सूत के तार काते हैं, उनकी संख्या भी बता देता था। उस सूची में सबसे पहला नाम गांधीजी का था। उस दिन भी नियमानुसार सब लोग प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए। गांधीजी का नाम पुकारा गया। उन्होंने उत्तर में कहा, ॐ।

लेकिन सूत के तारों की संख्या तो उन्हें मालूम ही नहीं थी। उन्होंने सुबैया की ओर देखा। सुबैया चुप रह गये। गांधीजी भी चुप रहे।

हाजिरी समाप्त हो गई। प्रार्थना भी समाप्त हो गई। प्रार्थना के बाद गांधीजी आश्रमवासियों से कुछ बातचीत किया करते थे, लेकिन उस दिन गांधीजी बहुत गम्भीर थे, जैसे उनके अन्तर में गहरी वेदना हो, जैसे मन में मन्थन चल रहा हो। उन्होंने व्यथा-भरे स्वर में कहना आरम्भ किया, "मैंने आज भाई सुबैया से कहा था कि मेरा सूत उतार लेना और मुझे तारों की संख्या बता देना। मैं मोह में फंस गया। सोचा था सुबैया मेरा काम कर लेंगे, लेकिन यह मेरी भूल थी। मुझे अपना काम आप करना चाहिए था। मैं सूत कात चुका था, तभी एक जरूरी काम सामने आ गया और मैं सुबैया से सूत उतारने को कहकर बाहर चला गया। जो काम मुझे पहले करना था, वह नहीं किया। भाई सुबैया का इसमें कोई दोष नहीं, दोष मेरा है। मैंने क्यों अपना काम उनके भरोसे छोड़ा? मुझसे यह प्रमाद क्यों हुआ? सत्य के साधक को ऐसे प्रमाद से बचना चाहिए। उसे अपना काम किसी दूसरे के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। आज की इस भूल से मैंने एक बहुत बड़ा पाठ सीखा है। अब मैं फिर ऐसी भूल कभी नहीं करूंगा।"

हम सूर्य के सामने आंखें न खोल सकें तो...

उस वर्ष बम्बई में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की वर्ष-गांठ मनाई जा रही थी। उस उपलक्ष में वहां जो सभा आयोजित की गई, उसके सभापति थे गांधीजी। यह बात सभी जानते हैं कि इन दोनों महान् व्यक्तियों में कुछ बातों को लेकर तीव्र मतभेद था। वह मतभेद उन दिनों और भी उग्र हो उठा था। ऐसे वातावरण में गांधीजी का सभापति होना सबके लिए कौतूहल का कारण था। तरह-तरह की कल्पनाएं लोग करने लगे थे—न जाने अब क्या होगा ? शायद गांधीजी श्रीमती बेसेन्ट की खूब खबर लेंगे।

सभा का कार्य ठीक समय पर प्रारम्भ हुआ। गांधीजी अध्यक्ष-पद से बोलने के लिए खड़े हुए। सहज भाव से उन्होंने कहा, "मैं श्रीमती बेसेन्ट को बहुत दिनों से जानता हूं। कई वर्ष पहले लन्दन के विक्टोरिया हाल में इनका भाषण सुना था। तभी से मैं इनका आदर करता हूं। इनकी सेवाएं इतनी अधिक हैं कि शेषनाग की तरह हजार जबान मिलने पर भी मैं उनका वर्णन नहीं कर सकूंगा। आज मेरे और उनके बीच एक खास प्रकार का मतभेद है, लेकिन मैं आपसे अपने मन की बात कहता हूं। जब-जब मेरे और उनके बीच में मतभेद हुआ है तब-तब मैंने उसे अपनी ही गलती माना है। अगर हम पूरी तरह सूर्य के सामने आंखें न खोल सकें, तो यह सूर्य का दोष नहीं, हमारी

पुतलियों का दोष है। इनके और मेरे बीच जो मतभेद है, उसकी व्याख्या मैं इसी प्रकार करता हूं।"

: ५३ :

यह कहां का इंसाफ है ?

उस वर्ष लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन के साथ-साथ चर्खा-संघ की ओर से खादी प्रदर्शनी भी होनेवाली थी। उसके लिए चित्र आदि तैयार करने का भार श्री रावजीभाई पटेल पर था। उन्हें ऐसे चित्रों की आवश्यकता थी, जो अनपढ़ जनता की समझ में भी आ जायं।

आश्रम में ऐसा कोई चित्रकार नहीं था। नगर के एक चित्रकार द्वारा ही वे चित्र तैयार कराये गए। वे बारह चित्र थे। उनका मूल्य हुआ १२० रुपये।

गांधीजी उन चित्रों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। पूछा, "कितना खर्च हुआ ?"

श्री पटेल ने उत्तर दिया, "१२० रुपये।"

यह सुनकर गांधीजी बहुत दुःखी हुए। बोले, "ये चित्र तो किसी धनवान के घर को सुशोभित करनें लायक हैं। वे ही इतने पैसे दे सकते हैं। हम तो दरिद्र-नारायण के प्रतिनिधि हैं। हमारे लिए इतने पैसे खर्च करके चित्र तैयार करवाना उचित नहीं है। अगर हमने खादी प्रदर्शनी के लिए किसीसे कहा होता तो कोई-न-कोई ऐसा मिल ही जाता।" फिर सहसा पूछा, "ये चित्र

कितने दिनों में तैयार हुए हैं ?"

श्री पटेल ने उत्तर दिया, "लगभग बारह दिन लगे हैं।"

वह बोले, "तो मेहनताना दस रुपये रोज पड़ा। आज हिन्दुस्तान में कितने लोगों को दस रुपये रोज मिलते हैं! कातने वाले और बनजारे को क्या मिलता है? यह तुमने किसीसे पूछा है? इस गरीब मुल्क में मजदूरी उतनी ही निश्चित करनी चाहिए, जिससे कोई भूखों न भरे!"

उस समय बुनकर श्री रामजीभाई आ गये। गांधीजी ने उनसे पूछा, "क्यों रामजी, तुम रोज कितने गज बुनते हो और उससे तुम्हें क्या मिलता है?"

रामजीभाई ने उत्तर दिया, "बापू, लगातार काम करें तब महीने में बड़ी कठिनता से पन्द्रह-बीस रुपये मिल जाते हैं।"

श्री पटेल की ओर देखकर गांधीजी बोले, "देखो, सारा दिन काम करने पर भी रामजीभाई को आठ आने से ज्यादा नहीं मिलते और एक चित्रकार को दस रुपये मिल जाते हैं! यह कहां का इन्साफ है? मेरा बस चले तो हर तरह के मजदूर के लिए एक आना घंटा निश्चित कर दूं। वह चाहे वकील हो या डाक्टर या पुलिस अधिकारी या सरकारी अफसर, कोई भी क्यों न हो! इस देश में हर व्यक्ति को आठ घण्टे काम करना चाहिए।

ज़रा वक्त भी लग जाय तो कोई बात नहीं

'भारत-छोड़ो'-आन्दोलन के समय गांधीजी जब जेल से छूटकर आये तो उनके कई साथी फिर से जेल जाने के लिए उत्सुक थे। श्री रावजीभाई पटेल उन्हींमें से एक थे। वह गांधीजी के बहुत पुराने साथी थे। इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए वह उनके पास पहुंचे। आने से पहले उन्होंने गांधीजी को तार दे दिया था। उन दिनों वह बहुत व्यस्त थे। नहीं चाहते थे कि ये लोग वहां आवें। लेकिन संभवत: गांधीजी का तार समय पर नहीं मिला और ये लोग पहुंच गये।

सायंकाल की प्रार्थना के समाप्त हो जाने पर उन्होंने गांधीजी को प्रणाम किया। गांधीजी बोले, "इस बारे में तुम प्यारेलाल से बात कर लो। वह तुम्हें सबकुछ बता देगा। फिर भी मिलने की जरूरत समझो, तो जरूर मिलना।"

लेकिन श्री रावजीभाई पटेल प्यारेलालजी से बात करके संतुष्ट न हो सके। गांधीजी ने उन्हें दूसरे दिन ठीक चार बजे मिलने के लिए बुलाया। किसी कारणवश वे लोग दस-पन्द्रह मिनट देर से पहुंचे। गांधीजी बाट जोहते बैठे थे। उस समय अन्य कई व्यक्ति भी उनके पास बैठे थे। उन दिनों वह बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगे थे। वायसराय से पत्र-व्यवहार हो रहा था। फिर भी उन्होंने श्री पटेल से कहा, "ज़रा ठहरो, मैं इन कामवालों से बातचीत कर लूं।"

आखिर गांधीजी इन लोगों की ओर मुखातिब हुए। बातें करते हुए पांच मिनट बीत चुके थे कि सुशीलाबहन बोल उठीं, "बापू, पांच मिनट हो गये, अब बन्द कीजिये।"

गांधीजी नियम के पाबन्द थे। फिर ये लोग देर से भी पहुंचे थे। वह वहीं समाप्त कर सकते थे, लेकिन बोले, "मेरे हृदय में जो कुछ चल रहा है, वह इनसे नहीं तो और किससे कहूंगा! आश्रम के पुराने आदमी हैं। ज़रा वक्त भी लग जाय तो कोई बात नहीं। सब बातें इन्हें अच्छी तरह समझानी चाहिए और देख, इस बात में ही तूने मेरे पांच मिनट ले लिये।"

और फिर श्री पटेल की ओर मुखातिब हो कर बोले, "तुमने जेल जाने की बात कही, वह ठीक है, लेकिन जबतक मैं बाहर रहूं, तबतक तुम भी बाहर रहो, तो अच्छा है। मैं जब गिरफ्तार हो जाऊं तब जो तुम्हें ठीक लगे, करना। ८ अगस्त के प्रस्ताव के अन्तिम भाग में साफ-साफ बता दिया गया है कि वक्त पड़ने पर हर आदमी अपना नेता है।"

: ५५ :

मंत्री तो जनता के सेवक हैं

देश के विभाजन से कुछ दिन पूर्व गांधीजी दिल्ली से कलकत्ता जा रहे थे। मार्ग में पटना स्टेशन पर मंत्रिमंडल के सभी मंत्री उनसे मिलने आये। ज़नता की भी अपार भीड़ थी। खूब चन्दा इकट्ठा किया। तबतक गांधीजी मंत्रियों से बातें करते रहे।

रेल के रवाना होने का समय आ गया। परन्तु स्टेशन मास्टर नौकर आदमी ठहरे। मंत्रिगण गांधीजी से बातों में व्यस्त हों, तो वह गाड़ी कैसे चलायें! साहस करके वह गांधीजी के पास आये, बोले, "रेल के चलने का समय तो हो गया है, परन्तु आपको जरूरत हो तो रोकूं। जिस समय कहें उस समय रवाना करूं!"

कोई मन्त्री इस प्रश्न का उत्तर दे उससे पहले ही गांधीजी बोल उठे, "आप यह पूछने आये हैं, इसमें मैं आपका दोष नहीं पाता। आपको तालीम ही ऐसी मिली है। लेकिन आप जैसे यहां पूछनें आये हैं वैसे क्या हर डिब्बे में पूछनें जायंगे? यदि वहां न जायं तो आपको यहां भी न आना चाहिए था। मैं कोई हाकिम नहीं हूं। ये मंत्री आपके हाकिम जरूर हैं, परन्तु ये सत्ता के भाव से मुझसे मिलनें नहीं आये। आपका फर्ज है कि आप कानून की रू से जब गाड़ी रवाना करनी है तब सीटी बजा दें। हां, आपके अफसरों ने किसी कारण से आपको कोई लिखित कार्यक्रम दिया हो तो बात दूसरी है। परन्तु यदि ऐसा नहीं है तो आपको सदा की तरह काम करते रहना चाहिए। मंत्रियों को देखकर आपको घबराना नहीं चाहिए। ये तो जनता के सेवक हैं। आपको इनके सामनें निडर बनना चाहिए। मंत्रियों को भी आप लोगों को नौकर न समझकर छोटे भाई समझना चाहिए। तभी हम सच्चे लोकतन्त्र का आनन्द लूट सकेंगे।... आपको उलाहना नहीं देता, आप दुःख न मानें। परन्तु यह हम सबको शिक्षा देनेवाला मौका मिल गया, इसलिए इस सम्बन्ध में न कहूं तो आपको क्या पता चले और (विनोद में) मैं तो

शिक्षक ठहरा ! इसलिए मेरे स्वभाव में ही यह चीज है कि जब मेरी अन्तरात्मा को भूल मालूम हो तब उसे सुधारे बिना मुझसे नहीं रहा जाता। चलिये, आपको इतने मिनट दिये। अब आप अपनी सुविधा से गाड़ी रवाना करने में संकोच न कीजिये।"

स्टेशन-मास्टर ने गांधीजी को प्रणाम किया। वह बहुत खुश थे! बोले, "महात्माजी की कैसी महानता और विशालता है। नौकरी लगने के बाद तैंतालीस वर्ष की उम्र में ऐसी निडरता और बड़े अनुशासन का यह पहला ही उदाहरण है, इसीलिए तो महात्माजी देश के राष्ट्रपिता कहलाते हैं।"

: ५६ :

इतना-सा पेंसिल का टुकड़ा सोने के टुकड़े के बराबर है

सन् १९४७ में गांधीजी जब बिहार की यात्रा कर रहे थे तो मनु ने देखा कि उनकी पेंसिल बहुत छोटी हो गई है। उसने उसकी जगह नई पेंसिल रख दी। रात को साढ़े बारह बजे गांधी-ने उसे उठाया। कहा, "मेरा वह पेंसिल का टुकड़ा तो ले आओ!"

मनु बेचारी कुछ नींद में थी। घबरा गई। लेकिन वह टुकड़ा तो ढूंढ़ना ही था। उसे याद नहीं था कि वह उसने कहां रखा है। सवा बज गया तो गांधीजी अन्दर आये और पूछा, "क्यों, नहीं मिलती ?"

मनु ने कहा, "बापूजी, कहीं-न-कहीं रखकर मैं भूल गई हूं।"

गांधीजी बोले, "ठीक है, सवेरे ढूंढ़ लेना। अब सो जाओ।"

सवेरे साढ़े तीन बजे प्रार्थना हुई। गांधीजी ने फिर पेंसिल की याद दिलाई। बड़ी कठिनता से बगल-झोले की जेब में से वह पेंसिल निकली। मनु ने उसे तुरन्त गांधीजी को दे दिया। शान्त भाव से गांधीजी ने कहा, "ठीक है, मिल गई तो अब रख दो। अभी जरूरत नहीं है।"

मनु को बड़ा क्रोध आया। इतना परेशान किया। खुद भी परेशान हुए और जब मिल गई तो कहते हैं अब नहीं चाहिए। खैर, कुछ भी हो, उस टुकड़े को उसने संभालकर रख दिया। लगभग दो हफ्ते बाद गांधीजी दिल्ली लौट गये। लार्ड माउन्ट-बेटन से देश के भविष्य के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी। उन्हें जरा भी फुर्सत नहीं होती थी, लेकिन अचानक रात को बारह बजे उन्होंने मनु को उठाया। कहा, "पटना में मैंने तुम्हें काली पेंसिल का टुकड़ा दिया था, वह लाना तो।"

मनु तुरन्त वह टुकड़ा ले आई। संभालकर जो रखा हुआ था। गांधीजी बोले, "अब तुम मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गईं। तुम जानती हो कि हमारा देश कितना गरीब है। हजारों गरीब बालकों को पेंसिल का इतना छोटा टुकड़ा भी लिखने को नहीं मिलता। तब हमें क्या अधिकार है कि इस प्रकार जहां-तहां पेंसिल का टुकड़ा रख दें अथवा बेकार समझकर फेंक दें। अभी तो बहुत काम दे सकता है। हमारे देश में इतना-सा पेंसिल का टुकड़ा सोने के टुकड़े के बराबर है। यह जानकर तुम्हें पहले ही

दिन उसे संभालकर रखना चाहिए था, परन्तु तुमने लापरवाही से इसे कहीं रख दिया था, क्योंकि तुम्हारा खयाल होगा कि बापू के पास बहुतेरी पेंसिलें आती हैं। आज तुम तुरन्त ले आईं, इस-लिए परीक्षा में पास हो गईं। मुझे अब विश्वास हो गया कि तुम्हारे हाथ में चीजें सौंपी जा सकती हैं।"

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनके नाम, प्रसंगों की संख्या तथा लेखकों के नाम साभार दिये जा रहे हैं :

आत्मकथा (गांधीजी) ४०
एकला चलो रे (मनुबहन गांधी) २५
ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) २
कलकत्ते का चमत्कार (मनुबहन गांधी) ४६
कुछ देखा, कुछ सुना (घनश्यामदास बिड़ला) १४
गांधीजी : एक झलक (श्रीपाद जोशी) १५, १७, १६, ४१
गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) मार्तण्ड उपाध्याय ५०
गांधीजी और मजदूर प्रवृत्ति (शंकरलाल बैंकर) ६
गांधीजी के जीवन-प्रसंग (सं० चंद्रशंकर शुक्ल) १०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८
गांधीजी के संस्मरण (शांतिकुमार) १
गांधीजी के सम्पर्क में (सं० चंद्रशंकर शुक्ल) ३६, ५२, ५३, ५४
गृहणी (मार्च १६४०) १६
बापू की झांकियां (काका कालेलकर) ७
बापू की मीठी-मीठी बातें (साने गुरुजी) ३८
बापू की विराट वत्सलता (काशिनाथ त्रिवेदी) ५१
बापू के जीवन-प्रसंग (मनुबहन गांधी) ८, ३०
बिहार की कौमी आग में (मनुबहन गांधी) २६, ३१, ३२, ३४, ३६, ५५, ५६

महादेवभाई की डायरी, प्रथम भाग (महादेव देसाई) ३, १८
महादेवभाई की डायरी, दूसरा भाग (महादेव देसाई) २२
महादेवभाई की डायरी, तीसरा भाग (महादेव देसाई) ४, ५, १२, ३३, ३५
मेरे हृदयदेव (हरिभाऊ उपाध्याय) ६, ११
विश्ववाणी (जनवरी, १९४९) ३७
हरिजन सेवक (१९३३) २१, २३, २४
हरिजन सेवक (१९३४) २६, २७, २८
हरिजन सेवक (१९३५) १३, २०

●

इस माला की पुस्तकें

□

सस्ता साहित्य मंडल • श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान • संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है